छन्दो रत्नमाला

आचार्य :-

श्रीमद् विजय सुशील सूरि :

शांतिलाल दोशी

श्रीनेमि-लावण्य-दक्ष-सुशीलग्रन्थरत्नमाला रत्न ७६ वाँ

छन्दोरत्नमाला

❀ विरचिता ❀

शासनसम्राट्—सूरिचक्रचक्रवर्ति—तपोगच्छाधिपति-महाप्रभावशालि--परमपूज्याचार्यमहाराजाधिराज **श्रीमद् विजयनेमिसूरीश्वराणां** दिव्य - पट्टालङ्कार - साहित्यसम्राट्-व्याकरणवाचस्पति—शास्त्रविशारद—कविरत्न—अनुपमशासनप्रभावक - परमपूज्याचार्यप्रवर **श्रीमद् विजयलावण्यसूरीश्वराणां** प्रधानपट्टधर-धर्मप्रभावक-शास्त्रविशारद-कविदिवाकर-व्याकरणरत्न—परमपूज्याचार्यवर्य **श्रीमद्विजयदक्षसूरीश्वराणां** पट्टधराचार्य **श्रीमद् विजयसुशीलसूरिणा** ।

❀ प्रकाशकम् ❀

आचार्यश्रीसुशीलसूरिजैनज्ञानमन्दिरम्

शान्तिनगर—सिरोही (राजस्थान)

सम्पादक :

जैनधर्मदिवाकर-
राजस्थानदीपक-
मरुधरदेशोद्धारक-
परमपूज्य आचार्यदेव-
श्रीमद् विजयसुशील
सूरीश्वरजी म. सा. के
विद्वान् शिष्यरत्न कार्यदक्ष
मधुरप्रवचनकार
पूज्य मुनिराजश्री जिनोत्तम
विजयजी महाराज सा.

卐 卐 卐

प्रकाशक :

आचार्यश्रीसुशीलसूरि
जैन ज्ञानमन्दिर
शान्तिनगर,
सिरोही
(राजस्थान)

श्रीवीरनिर्वाण सं. २५१४ वि. सं. २०४४ नेमि सं. ३९
प्रतियाँ—५०० प्रथमावृत्ति मूल्य : ११ रुपये

卐 प्राप्ति-स्थान 卐

[१] **आचार्यश्री सुशीलसूरि जैन ज्ञानमन्दिर**
शान्तिनगर-सिरोही (राजस्थान)

[२] **श्री नेमिनाथ जैन श्वेताम्बर तीर्थ**
अम्बाजीनगर, सांडेराव रोड **फालना** (राज०)

[३] **श्री शीतलनाथ जैन श्वेताम्बर मन्दिर**
पावटा, जोधपुर (राजस्थान)

मुद्रक : ताज प्रिण्टर्स, जोधपुर, (राज०)

ॐ
ह्रीं
शासन सम्राट् परम पूज्य आचार्य
महाराजाधिराज श्रीमद् विजय
नेमिसूरीश्वरजी महाराज साहेब
साहित्य सम्राट् परम पूज्य
आचार्य देवेश श्रीमद् विजय
लावण्यसूरीश्वरजी महाराज सा.
धर्मप्रभावक परम पूज्य
आचार्य प्रवर श्रीमद् विजय
दक्षसूरीश्वरजी महाराज सा.
धर्मलाभ
जैन धर्म दिवाकर परम पूज्य आचार्य भगवंत श्रीमद्
विजय सुशील सूरीश्वरजी महाराज सा.
सुमधुर प्रवचनकार परम पूज्य मुनिराज श्री
श्री जिनोत्तम विजयजी महाराज सा.
योगेश आर्ट पालीताणा

समर्पण

सुप्रसिद्ध **श्रीसिद्धहेमव्याकरण** तथा **छन्दोऽनुशासन**
इत्यादि अनेक महान् ग्रन्थों के प्रणेता कलिकाल-
सर्वज्ञ परमपूज्य आचार्यप्रवर **श्रीमद्**
हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजश्री के
कर-कमलों में यह **'छन्दोरत्नमाला'**
ग्रन्थरत्न सादर समर्पित
करता हूँ।

—विजयसुशीलसूरि

प्रकाशकीय - निवेदन

'श्री नेमि-लावण्य-दक्ष-सुशीलग्रन्थमाला' का ७६ वाँ रत्न आपके सम्मुख रखते हुए हमको आनन्द एवं उल्लास का अधिक अनुभव हो रहा है। इस नूतन ग्रन्थ का नाम **'छन्दोरत्नमाला'** है। इसके कर्त्ता परम पूज्य शासनसम्राट् समुदाय के सुप्रसिद्ध जैनधर्मदिवाकर - शासनरत्न - तीर्थप्रभावक - राजस्थानदीपक - मरुधरदेशोद्धारक - शास्त्रविशारद - साहित्यरत्न - कविभूषण - बालब्रह्मचारी पूज्यपाद **आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशीलसूरीश्वर जी म. सा.** हैं। उन्होंने छन्दविषयक छन्दोऽनुशासन, वृत्तरत्नाकर, छन्दोमञ्जरी, श्रुतबोध तथा काव्यविषयक अनेक ग्रन्थों का अवलोकन कर इस नव्य ग्रन्थ का सर्जन अति सुन्दर किया है। तीन स्तबकों में सारा ग्रन्थ पूर्ण किया है। छन्द-विषयक वस्तुपरिचयात्मक प्रथम स्तबक है। मात्रिकछन्द-निरूपणात्मक द्वितीय स्तबक है तथा सुप्रसिद्ध १०८ छन्दों का क्रमशः लक्षणयुक्त निरूपणकारक तृतीय स्तबक है। सरल संस्कृत भाषा में इस ग्रन्थ की सुन्दर रचना होने से साक्षरों को तथा छन्दजिज्ञासुओं को यह ग्रन्थ अति उपयोगी होगा।

इस ग्रन्थ का सम्पादन-कार्य पूज्यपाद ग्राचार्यदेव के विद्वान् शिष्यरत्न, कार्यदक्ष एवं सुमधुर प्रवचनकार **पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तम विजयजी महाराज** ने भली प्रकार से किया है ।

इस ग्रन्थ की भूमिका **डॉ. चेतनप्रकाशजी पाटनी** ने लिखी है ग्रौर उन्हीं की देखरेख में इसके स्वच्छ, शुद्ध एवं निर्दोष प्रकाशन का कार्य सुसम्पन्न हुग्रा है ।

परमपूज्य ग्राचार्य म. सा. की ग्राज्ञानुसार हमारे प्रेस सम्बन्धी कार्य में पूर्ण सहकार देने वाले जोधपुर निवासी **श्री सुखपालजी भण्डारी** तथा **संघवी श्री गुणदयालचन्दजी भण्डारी** एवं **श्री मंगलचन्दजी गोलिया** इत्यादि हैं । 'सुशील-संदेश' के सम्पादक सिरोहीनिवासी **श्री नैनमलजी सुराणा** तथा जैन विधि-कारक **श्री मनोजकुमार बाबूमलजी हरण** (एम.कॉम.) इत्यादि ने भी इस ग्रन्थ को शीघ्र प्रकाशित करने की प्रेरणा की है । प्रेस में ग्रक्षरसंयोजन का कार्य **श्री राधेश्याम सोनी** व **ग्रब्दुल सलीम शेख, मोहम्मद साबिर शेख** ने कुशलता से सम्पन्न किया है ।

इन सभी का हम हार्दिक ग्राभार मानते हैं ।

भूमिका

भारत देश में बहुत प्राचीन काल से कविता पद्य में ही लिखी जाती रही है। इस दीर्घकालीन घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण पद्य और कविता को एक-दूसरे का पर्याय समझने का भ्रम भी हुआ है। कविता के लिए जो विशेषताएँ आवश्यक हैं उनके होने पर गद्य में कथित उक्ति भी कवित्वपूर्ण कही जा सकती है फिर भी पद्यबद्ध होने से उसमें अधिक सौन्दर्य समाविष्ट होता है, यह निश्चित है। जब मात्रा, वर्णसंख्या, विराम, गति या लय तथा तुक आदि के नियमों से युक्त रचना होती है तब उसे पद्य कहते हैं। जिस शास्त्र में पद्य-रचना के नियमों, पद्यों के नाम, लक्षण, भेद आदि के सम्बन्ध में विचार किया जाता है, उसे छन्दशास्त्र कहते हैं। पद्य और छन्द समानार्थक हैं।

संस्कृत में छन्दशास्त्र के प्रथम रचयिता पिंगलाचार्य माने जाते हैं। उनका 'पिङ्गल छन्दःशास्त्र' ही इस विषय का पहला ग्रन्थ है। अतः इस शास्त्र के प्रवर्तक के नाम पर इसे पिंगलशास्त्र भी कहते हैं। पिंगलकृत छन्दःशास्त्र 'सूत्र' रूप में लिखा गया है, उसमें आठ अध्याय हैं। उसके आधार पर 'अग्निपुराण' में इस विषय का विस्तार के साथ वर्णन किया

गया है। आगे चलकर अनेक ग्रन्थों में इस विषय का उत्तरोत्तर अधिक विस्तार से विवेचन किया गया है जिनमें क्षेमेन्द्र कृत 'सुवृत्ततिलक', भट्ट केदार कृत 'वृत्तरत्नाकर' और गंगादास कृत 'छन्दोमञ्जरी' अतिप्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। जैनाचार्य कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्रसूरीश्वरजी का 'छन्दोनुशासनम्' भी इस विषय का उल्लेखनीय ग्रन्थ है।

वयोवृद्ध जैन **आचार्यश्री विजयसुशीलसूरिजी म.** सिद्धहस्त कवि और सरलमना, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी साहित्यरसिक साधु हैं। आपकी लेखनी से शताधिक रचनाओं का प्रणयन हुआ है और इस वृद्धावस्था में भी उस लेखनी को अभी विराम नहीं मिला है। अपने शुभोपयोग निमित्त आप सदैव अध्ययन-मनन और लेखन कर्म में प्रवृत्त रहते हैं। छन्दशास्त्र के अध्येताओं के लिए आपने इस लघुकाय **'छन्दोरत्नमाला'** पुस्तक का निर्माण किया है जो प्रारम्भिक अध्येताओं को एतद्विषयक सम्पूर्ण प्रामाणिक जानकारी प्रदान करती है।

छन्दोरत्नमाला तीन स्तबकों से ग्रथित है। **प्रथम स्तबक** में छन्द के लक्षण, अर्थ, भेद, लघुगुरुवर्णज्ञान, मात्राज्ञान, गणज्ञान, यति-गतिज्ञान आदि का संक्षिप्त किन्तु यथेष्ट परिचय दिया गया है। **द्वितीय स्तबक** में मात्रिक छन्दों का विवेचन है और **तृतीय स्तबक** में वर्णिक छन्दों का। काव्यशास्त्र के प्रारम्भिक अध्येताओं के लिए इतने ही छन्दों का ज्ञान अपेक्षित है, ऐसा कहना उन्हें भ्रम में डालना होगा। पर इतना अवश्य है कि ये कतिपय उन छन्दों में हैं जिनमें हमारे काव्य-वाङ्मय का अधिकांश उपनिबद्ध हुआ है। छन्दों के लक्षणों के लिए आचार्यश्री ने प्रामाणिक संस्कृत ग्रन्थों को आधार बनाया है,

उदाहरण भी प्रसिद्ध ही चुने गए हैं। कहीं-कहीं आचार्यश्री ने स्वयं भी उदाहरणस्वरूप छन्दरचना की है। एक से अधिक उदाहरण देकर और तालिकायें बनाकर आचार्यश्री ने विषय की दुरूहता को कम किया है। इस प्रकार इस लघुकृति से आचार्यश्री के त्रिविधरूप काव्यकार, शास्त्रकार और व्याख्याकार प्रकट होते हैं।

लोकमंगल की पुनीत भावना से साहित्य-साधना में रत आचार्यश्री स्वस्थ एवं नीरोग रह कर दीर्घजीवी हों और उनकी यशस्वी लेखनी का अवदान साहित्य-समाराधकों को अनवरत प्राप्त होता रहे, यही मंगल कामना है। इति शुभम्—

रक्षाबन्धन, दि. २७-८-८८ —**डा. चेतनप्रकाश पाटनी**

अनुक्रमणिका

प्रथमः स्तबकः (१-२४)

मंगलाचरणम् १, छन्दसां लक्षणम् २, छन्दश्शब्दस्यार्थः २, छन्दसां भेदाः ३, लघुगुरुवर्णज्ञानम् ६, मात्राज्ञानम् ६, युगायुक्संज्ञे १३, गणज्ञानम् १३, अथ मात्रागणाः १७, यतिगत्योर्ज्ञानम् २१,

द्वितीयः स्तबकः (२५-४६)

अथ मात्रिकच्छन्दसां प्रकरणम्

पथ्या २९, विपुला ३०, चपला ३१, मुखचपला ३२, जघनचपला ३२, गीति ३३, उपगीति ३४, उद्गीति ३५, आर्यागीति ३५, वक्त्रछन्दः ३६, पथ्यावक्त्रः ३७, चपलावक्त्रः ३८, अचलधृति ३९, विश्लोक ३९, चित्रा ४०, पादाकुलक ४१, दोहडिका ४२, वैतालीय ४२, औपच्छन्दसिकं ४४, आपातलिका ४४, दक्षिणान्तिका ४५.

तृतीयः स्तबकः (४७-१४८)

श्री ४७, स्त्री ४८, मद ४८, नारी ४८, मृगी ४९, मदन ४९, कन्या ५०, सुमति ५०, पंक्तिः ५०, प्रीतिः ५१, मध्या ५१, शशिवदना ५२, विद्युल्लेखा ५२, वसुमति ५३, विमला ५३, सुनन्दा ५४, मदलेखा ५४, ललिता ५५, हंसमाला ५५, भ्रमरमाला ५५, चित्रपदा ५६, विद्युन्माला ५६, नाराच ५७, माणवक ५७, हंसकत ५८, समानिका ५९, प्रमाणिका ६०, सिंहलेखा ६१, वितान ६१, हसमुखी ६२, वृहत्तिका ६२, भुजगशिशुभृता ६३, कनक ६३, शुद्धविराड् ६४, पणव ६५,

चित्रगति ६५, मयूरसारिणी ६६, रुक्मवती ६६, मत्ता ६७, मनोरमा ६८, उपस्थिता ६९, निलया ७०, इन्द्रवज्रा ७०, उपेन्द्रवज्रा ७२, उपजाति ७३, सुमुखी ७५, दोधक ७६, शालिनी ७७, वातोर्मी ७९, श्री ८०, भ्रमरविलसित ८१, रथोद्धता ८२, स्वागता ८३, वृन्ता ८५, भद्रिका ८६, श्येनिका ८७, मौक्तिकमाला ८८, उपस्थिता ८९, उपस्थित ८९, चन्द्रवर्त्म ९०, वंशस्थ ९१, इन्द्रवंशा ९३, तोटक ९४, द्रुतविलम्बित ९५, पुट ९७, प्रमुदितवदना ९७, जलोद्धतगति ९८, भुजङ्गप्रयात ९९, स्रग्विणी १००, प्रियंवदा १०१, मणिमाला १०२, ललिता १०३, मौक्तिकदाम १०४, तामरसं १०५, प्रमिताक्षरा १०५, वैश्वदेवी १०६, मालती १०७, क्षमा १०८, प्रहर्षणीय १०९, रुचिरा ११०, सुदन्त १११, मत्तमयूर ११२, असंबाधा ११३, अपराजिता ११३, वसन्ततिलका ११४, शशिकला ११६, स्रग् ११७, मणिगुणनिकर ११८, मालिनी ११८, तूणक १२०, प्रभद्रकं १२०, चन्द्रलेखा १२२, वाणिनी १२३, पञ्चचामर १२४, शिखरिणी १२५, हरिणी १२७, पृथ्वी १२८, मन्दाक्रान्ता १३०, चित्रलेखा १३१, शार्दूलविक्रीडितम् १३२, मेघविस्फूर्जित १३४, वृत्त १३५, स्रग्धरा १३६, भद्रक १३८, मदिरा १३९, अश्वललित १४०, तन्वी १४१, क्रौञ्चपदा १४३, भुजङ्गविजृम्भित १४४,

दण्डकवृत्तानि

चण्डवृष्टिप्रपातनामदण्डक: १४५, [इत्याद्यः]

प्रशस्तिः १४९

भूल सुधार

१. पृष्ठ संख्या ५३ की १५वीं पंक्ति में **'सुनन्दानामकं'** के स्थान पर **'विमलानामकं'** पढ़ें।

---

२. पृष्ठ सं. ११८ पर 'उदाहरणम्' के बाद **'गवेषणीयमत्र'** के स्थान पर यह पढ़ें—

सकलसफलशुभ - मतिरतिसुखदः,
अमलकमलदल - छविरिव महितः।
सुरनरमुनिगण-नुतसुखसरिता,
अमितनिगमनिधि - रवतु जिनवरः॥ १ ॥

मणि-गुण-निकरः छन्दः	नगणः	नगणः	नगणः	नगणः	सगणः
	सकल	सफल	शुभम	तिरति	सुखदः
	।।।	।।।	।।।	।।।	।।S

तद्दिव्यमव्ययं धाम, सारस्वतमुपास्महे ।
यत्प्रसादात्प्रलीयन्ते, मोहान्धतमसच्छटाः ।।

•

शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे ।
सर्वदा सर्वदास्माकं संनिधिं सन्निधिं क्रियात् ।।

•

करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः ।
पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वतीदेवी ।।

॥ विमर्श-वेदिका ॥

साहित्यं नामाऽलौकिकानन्दकारणं सकलसुखसाधकं दुःख-राहित्यनिदानं वरीवर्त्ति नात्र मनागपि सन्देहस्यावकाशः। सहितस्य भावः साहित्यम्। अत्र हि दिवादिगणात्तृप्त्यर्थकः षहधातोः क्तप्रत्ययो विहितः। साहित्यस्य विविधाः रचनाः दरादृश्यन्ते, संस्कृतसाहित्यक्षेत्रे काव्य-कोश-छन्दोव्याकरणादिदृष्ट्या। अत्र वयं छन्दःशास्त्रस्य विषये किमपि वक्तुमुत्सुकाः।

छन्दोरचना–

पद्यरचनासन्दर्भे छन्दसां ज्ञानं सुतरामावश्यकं वरीवर्त्ति। यस्यां रचनायां मात्राणां, वर्णानां, गणानां, लघुगुरुवर्णानां, विरामाणाञ्च विचारः प्रस्तूयते सैषा छन्दःशास्त्रपद्धतिः।

छदयति रसभावादीन् यत् तच्छन्दः

संस्कृतभाषायां वैदिक-लौकिकभेदेन छन्दसां द्वैविध्यमुक्तम्। अत्र खलु लौकिकछन्दसां निदर्शनमपेक्ष्यते। छन्दःशास्त्रस्याचार्यः श्रीपिङ्गलो मात्रावर्णभेदेन छन्दसां द्वैविध्यं स्वीकृतवान्।

मात्रिकं छन्दः

यस्यां पद्यरचनायां मात्राणां गणना क्रियते—तन्मात्रिकं छन्दः। अत्र खलु मात्रिकछन्दोरचनायां प्रत्येकपादे वर्णाः समानाः असमानाः अपि भवन्ति। यथा—आर्यादिवृत्तम्।

वार्णिकं छन्दः

गणनिर्देशप्रयुक्तानां वर्णानां यत्र समीचीनतया समायोजनं भवति तद् वार्णिकं छन्दः। यथा—इन्द्रवज्रादिवृत्तम्।

मात्रिक-वार्णिकछन्दसां समम्, अर्धसमम्, विषमञ्चेति भेदेन त्रयस्त्रयोभेदाः प्राप्यन्ते । समवृत्ते—इन्द्रप्रजादीनि । अर्धसमवृत्ते-वैतालीयादीनि विषमवृत्ते—आर्येत्यादिवृत्तानि । पिङ्गलशास्त्रे-वृत्तरत्नाकरादिमूर्धन्यछन्दःशास्त्रेषु एतेषां लक्षणानि प्रतिपादितानि सन्ति ।

वृत्तरत्नाकरानुसारेण समार्धसमविषमछन्दसां लक्षणानि चेत्थम्—

समवृत्तलक्षणम्–

अङ्घ्रयो यस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिताः ।
तच्छन्दः शास्त्रतत्त्वज्ञाः समं वृत्तं प्रचक्षते ।।

अर्धसमवृत्तलक्षणम्–

प्रथमाङ्घ्रिसमं यस्य तृतीयश्चरणो भवेत् ।
द्वितीयस्तुर्यवद् वृत्तं, तदर्धसममुच्यते ।।

विषमवृत्तलक्षणम्–

यस्य पादचतुष्केऽपि, लक्ष्मभिन्नं परस्परम् ।
तदाहुर्विषमं वृत्तं, छन्दःशास्त्रविशारदाः ।।

छन्दःशास्त्रविकासे जैनानां योगदानम्

'आवश्यकतैवाविष्काराणां जननीति'—दृष्टयाऽकारणकरुणावरुणालयैरनुकम्पापरवशैराचार्यैं हितावहदृष्टया छन्दसामनुसन्धानपूर्वकं सकलनं विधाय तेषां तेषाञ्च लक्षणोदाहरणसंवलितं ललितं छन्दःशास्त्र रचितम् । अत्र च पिङ्गलाचार्याः, भट्टकेदाराः कलिकालसर्वज्ञाः श्रीहेमचन्द्राचार्याः इत्यादीनां स्मरणं किमपि कमनीयं जीवनरसमिवापूरयति सचेतसां चेतस्सु ।

'यथा यथोपयुनक्ति तथा तथा परिष्कृतिर्भवति'—इति सिद्धान्तानुसारेण छन्दःशास्त्रस्य विकासोऽजनि। यथा—विश्व-वाङ्मये जैनाचार्यैं गृहस्थमनीषिभिश्च विशिष्टं योगदानं विहितं तथैव छन्दःशास्त्रविषयेऽपि।

पिङ्गलकृते छन्दःशास्त्रेऽष्टौ 'अध्यायाः' सन्ति। तदनन्तरं च छन्दःशास्त्रविकासपरम्परायां क्षेमेन्द्रकृतं 'सुवृत्ततिलकम्', केदार-भट्टकृतो 'वृत्तरत्नाकरः', श्रीगङ्गादासरचिता 'छन्दोमञ्जरी', कालिदासकृतः श्रुतबोधः, अन्यैश्च कृता विविधाः 'छन्दः प्रबोधिनी' त्यादयो ग्रन्थाः समुल्लसन्ति।

कलिकालसर्वज्ञः श्रीहेमचन्द्राचार्यः

जैनाचार्येषु कलिकालसर्वज्ञः श्रीहेमचन्द्राचार्यः साहित्यस्य प्रत्येकशाखायां - व्याकरण - कोशच्छन्दोऽलङ्कार - काव्य-न्याय-तत्त्वज्ञान-योगप्रभृतिविषयानधिकृत्य प्रौढानां निर्मातृत्वेन सुप्रसिद्धः। छन्दःशास्त्रेऽस्य **'छन्दोऽनुशासनम्'** नाम प्रौढं ग्रन्थरत्नम्। आचार्योऽयं गुर्जरप्रदेशस्य **'धुन्धुका'** नाम्नि ग्रामे वि.सं. ११४५ तमवर्षस्य कार्तिकपूर्णिमायां तिथौ जन्म प्राप्तवान्। अस्य मातुर्नाम **'चाहिणी'** (पाहिणी चंगी) पितुर्नाम च **'चच्च'** (चाचिग, चाच) इत्यास्ताम्। मोढजातीयवणिग्वंशे समुत्पन्न-स्यानयोर्बालकस्य नाम **'चङ्गदेवः'** **'चांगदेव'** इति वा निर्धारितं जातम्।

वि. स. ११५४ (अथवा ११५०) तमे वर्षे श्रीदेवचन्द्र-सूरेर्दीक्षां गृहीत्वा चंगदेवः **'सोमदेव'** नाम्नाऽऽम्नातः वि. सं. ११६२ (अथवा ११६६) तमे वर्षे च सूरिपदं प्राप्य **'हेमचन्द्राचार्य'** नाम्ना ख्यातिमगात्। श्रीहेमचन्द्राचार्यस्य वैदुष्येण श्रीसिद्धराज-जयसिंहस्तथा कुमारपाल उभावपि तुतुषतुः प्रभावितौ चाभूताम्।

स्वस्यागाधपाण्डित्यवशादेवाचार्यवर्यमिमं जनाः 'कलिकालसर्वज्ञ' इति सम्मानेन परिचाययन्ति ।

छन्दोरत्नमाला-परिचयः

'छन्दोरत्नमाला' आचार्यश्रीविजयसुशीलसूरीश्वरस्य छन्दोविषयिषो सरला, सरसा, सारावगाहिनी कृतिरस्ति । अस्याः रचनायाः प्रारम्भे भगवन्तं महावीरं, गणधरगौतमसुधर्माणौ शासनसम्राजं श्रीनेमिसूरीश्वरम्, शास्त्रविशारदं श्रीमल्लावण्यसूरीश्वरं, स्वगुरुं दक्षसूरीश्वरं नत्वा, नमस्कारात्मकं मङ्गलाचरणमाचरितम् ।

ग्रन्थोऽयं त्रिषु स्तबकेषु विभक्तः ।

प्रथमस्तबके—नमस्कारात्मक-मङ्गलाचरण-पुरस्सरं छन्दसां लक्षणं, छन्दःशब्दार्थः, छन्दसां भेदाः लघुगुरुवर्णज्ञानं, मात्राज्ञानं, युगायुक्संज्ञावबोधः, गणज्ञान, मात्रागणाः यतिगत्योरवबोधश्च विषयाः छन्दोभेदज्ञानतालिकापुरस्सरं सरलभाषया प्रामाणिकरूपेण पिङ्गलानुसारेण, आचार्यश्रीहेमचन्द्रानुसारेण च समीचीनतया समुपवर्णिताः सन्ति ।

द्वितीयस्तबके—मात्रिकच्छन्दसां वर्णनं लक्षणोदाहरणपुरस्सरं सुष्ठुरूपेण कृतम् । अत्र खलु 'एकविंशतिछन्दसां लक्षणानि' तेषामुदाहरणानि च वर्णितानि वर्तन्ते । सरलार्थोदाहरणाभ्यां अस्य ग्रन्थस्य शोभा जागर्ति ।

तृतीयस्तबके— श्री-स्त्री-मद-नारी-मृगी-मदन - कन्या-सुमति-पंक्ति-प्रीति-मध्या-शशिवदना-विद्युल्लेखादीनां बहूनां प्रसिद्धानां वार्णिक-छन्दसां लक्षणम्, उदाहरणम्, स्वरचितोदाहरणानि तालिकानिदेशपुरःसराणि सुन्दररीत्या प्रस्तुतानि

वर्तन्ते । अवसाने दण्डकवृत्तान्यपि संदर्शितानि वर्तन्ते । अथ च गणदेवतादीनां यन्त्रञ्च ।

आचार्यश्रीविजयसुशीलसूरि-रचितोदाहरणस्वरूपम्—

मणिगुणनिकरः छन्द

सकल-सफल - शुभ - मतिरतिसुखदः,
अमल-कमल-दलछविरिव महितः।
सुरनर - मुनिगण - नुतसुखसरिता,
अमितनिगमनिधिरवतु जिनवरः ॥

ग्रन्थकारपरिचयः

आचार्यश्रीमद्विजयसुशीलसूरिः साहित्यसाधनानिरतः। अनेनाचार्यवर्येण अनेकानि ग्रन्थरत्नानि विरचितानि सन्ति नानाविधासु । तेषु सुशीलनाममाला (शब्दकोशः) श्रीतीर्थंकर-चरितम्, षड्दर्शनदर्पणम्, गणधरवादकाव्यम्, शीलदूतम् (सुशीलाभिधावृत्तिसंवलितम्) इत्यादीनि ग्रन्थरत्नानि प्रमुखानि सन्ति ।

सम्प्रति वृद्धो भवन्नपि, नानाधर्मक्रियाकलापं कुर्वन् कारयंश्च सत्प्रेरणया सत्साहित्यनिर्माणे तत्परः । एष आचार्यः शासनसम्राट्-तपोगच्छाधिपति-श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वराणां पट्टालंकार-साहित्य-सम्राट्-व्याकरणवाचस्पति-श्रीमद्विजयलावण्यसूरीश्वराणां प्रधान-पट्टधर - धर्मप्रभावक - शास्त्रविशारद-श्रीमद्विजयदक्षसूरीश्वराणां पट्टधरः शिष्यः ।

सर्वत्राव्यभिचारेण श्रव्यतैव गरीयसी

साहित्यक्षेत्रे छन्दःप्रयोगदशायां श्रव्यत्वाश्रव्यत्वविषये विशेष-तोऽवधेयम् —

"त्र्यक्षरैस्त्र्यक्षरैरेव छेदैराभाति दोधकम्"
"विसर्गयुक्तैः पादान्तैः शोभामेति रथोद्धता"
"साकाराद्यैर्विसर्गान्तैः सर्वपादैः सविभ्रमा"
"स्वागता स्वागता भाति कविकर्मविलासिनी"

अर्थात्—अश्रव्यता सर्वतोभावेन त्याज्या अन्यथा तु 'हत-वृत्त' दोषेण दूषितं भवति साहित्यम्। अन्यत्र सर्वत्र सर्वेषां वृत्तानां प्रयोगो नोचितोऽपितु रस-भावानुसारेणैव तेषां तेषां छन्दसां प्रयोगः कर्तव्यः। यथा—

शमोदेशवृत्तान्ते, सन्तः शंसन्त्यनुष्टुभम्।
रथोद्धता विभावेषु, भव्या चन्द्रोदयादिषु॥
षाड्गुण्यप्रगुणा नीतिर्वंशस्थेन विराजते।
औदार्यरुचिरौचित्यविचारे हरिणी मता॥
प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता सुशोभते।
शौर्यस्तवे नृपादीनां शार्दूलक्रीडितं मतम्॥
दोधकस्यानुगुण्यञ्च कविभिः स्वीकृतंह्से।

एवं विज्ञायते यत् छन्दोनिर्माणकाले विशेषतः साहित्यक्षेत्रे श्रव्यतायाः ध्यानमावश्यकमन्यथा तु हतवृत्तदोषः समुत्पद्येत।

प्रस्तुतछन्दोरत्नमालायां व्यवहृतानां प्रसिद्धसाहित्यग्रन्थेषूप-निबद्धानामेव छन्दसां समाकलनमस्ति किन्तु छन्दःशास्त्रप्रवेशाय एतद् परमोपकारि भविष्यति। विशेषरूपेण विशिष्टजिज्ञासा चेत् पिङ्गलकृतं **छन्दःशास्त्रम्**, आचार्यश्रीहेमचन्द्रकृतं **छन्दोऽनुशासनम्** इत्यादीनि ग्रन्थरत्नानि विलोकनीयानि।

प्रकाशनमिदं जिज्ञासूनां मार्गदर्शकं भवतु। आचार्यश्रीविजय-सुशीलसूरिश्च स्वास्थ्यरत्नमासाद्य साहित्यसन्दोहनिरतो भवन् जनकल्याणं करोतु—इति मङ्गलकामना-सहितो विरमति—

विदुषां वशंवदः

स्थलम्
१०/४३० नन्दनवन
जोधपुर-८

आचार्यशम्भुदयालपाण्डेयः
व्याकरणाचार्यः, साहित्यरत्नम्
शिक्षाशास्त्री

आत्मनिवेदनम्

भारतीयसाहित्यक्षेत्रे पद्यरचनायाः वैशिष्ट्यं न तिरोहितं सुशेमुषीमताम्। तत्र छन्दोज्ञानस्य परमावश्यकतेति कृत्वा सारल्येन तज्ज्ञानाय व्यावहारिकाणां छन्दसां लक्षणोदाहरण—पुरस्सरं किञ्चिदिह बालोपकारधिया 'छन्दोरत्नमाला'—रूपेण सग्रथितं स्वरूपम्।

छन्दोरत्नमालायाः किं स्वरूपमिति विषये स्वनामधन्यानां विद्वन्मूर्धन्यानामाचार्यश्रीशम्भुदयालपाण्डेयानां विमर्शवेदिका तथा डॉ. चेतनप्रकाशपानटी 'महोदयानां' भूमिका स्फोरयति सकलमपि विषयजातम्।

अस्याः 'छन्दोरत्नमालायाः' समर्पणम्, कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्याय कृतम्। आचार्योऽयं तत्कालीनविदुषां समाजेऽद्वितीयो विद्वान् ग्रन्थकारश्चासीत्। अस्य परमश्रद्धेयस्याचार्यस्य व्यक्तित्वं कृतित्वञ्चालौकिकमेव दरीदृश्यते।

पुराणात्मकविधायां त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितम्, काव्यक्षेत्रे–कुमारपालचरितम् अथ च द्व्याश्रयकाव्यम्। व्याकरणक्षेत्रे-शब्दानुशासनम्, कोशक्षेत्रेऽस्य चत्वारः कोशाः सन्ति विख्याताः १. अभिधानचिन्तामणिः २. अनेकार्थसंग्रहः ३. निघण्टुः ४. देशीनाममाला च। अलंकारक्षेत्रे-काव्यानुशासनम्। छन्दःक्षेत्रे छन्दोऽनुशासनम्। अस्मिन् संस्कृत-प्राकृताऽपभ्रंशसाहित्यच्छन्दसां

निरूपणं विराजते। ग्रन्थस्य मौलिकं स्वरूपं सूत्रात्मकम् अस्ति। स्वयमेवाचार्येणास्य वृत्तिरपि लिखिता। 'रसगगाधर' इवास्यां रचनायामुदाहरणादिकं सर्वमेवाचार्यस्य स्वकीयमेव। न्यायक्षेत्रे प्रमाणमीमांसा। योगक्षेत्रे योगशास्त्रम्। स्तोत्रविषये द्वात्रिंशिकानां रचनाः।

स्वतः स्पष्टतामेति यदयमाचार्यः सर्वतन्त्रस्वतन्त्रः शास्त्रीयो विद्वान्, वैयाकरणः, दार्शनिकः, काव्यकारस्तथा लोकचरित्रस्यामरसुधारको बभूव। सिद्धराजजयसिंहकुमारपालादयोऽनेन प्रतिबोधितः। सर्वेऽपि साहित्यतत्त्वमर्मज्ञाः कल्पान्त यावत् एनं प्रति नतमस्तकाः भविष्यन्ति।

छन्दोरत्नमालायाः समर्पणं कुर्वता महता प्रमोदेनोत्साहेन च परमकृतज्ञभावः प्रस्तूयते। छन्दःशास्त्रप्रवेशाय मदीयैषा कृतिः छात्राणां बालमुनीनाञ्चोपकारं तनोतु—इति मंगलमनीषया विरमति—

—**आचार्यविजयसुशीलसूरिः**

卐 ॐ ह्रीँ अर्हं नमः 卐

॥ शासनसम्राट्-श्रीविजय**नेमिसूरीश्वर**परमगुरुभ्यो नमः ॥

॥ साहित्यसम्राट्-श्रीविजय**लावण्यसूरीश्वर**प्रगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीजैनधर्मदिवाकर-शासनरत्न-तीर्थप्रभावक-राजस्थान-दीपक-मरुधरदेशोद्धारक-शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न-कविभूषणेति पदसमलङ्कृतेन

श्रीमद्विजयसुशीलसूरिणा विरचिता

छन्दोरत्नमाला

मङ्गलाचरणम्

[अनुष्टुप्-वृत्तम्]

प्रणम्य **श्रीमहावीरं**, जिनेन्द्रं जिनभारतीम् ।
श्रीगौतम-सुधर्मौ वै, गणीन्द्रौ गुणिनौ तथा ॥ १ ॥

स्मृत्वा **श्रीनेमिसूरीशं**, तीर्थोद्धारधुरन्धरम् ।
पूज्यं शासनसम्राजं, सद्गुरुं ब्रह्मचारिणम् ॥ २ ॥

स्तुत्वा साहित्यसम्राजं, शास्त्रविशारदं कविम् ।
श्रीमल्लावण्यसूरीशं, व्याकृतौ च बृहस्पतिम् ॥ ३ ॥

नत्वा च स्वगुरुं दक्षं, **दक्षसूरिं** सहोदरम् ।
सुशीलसूरिराख्याति-निबन्धं छन्दसां नवम् ॥ ४ ॥

श्रीछन्दोरत्नमालेयं, शिशुकण्ठेषु शोभताम् ।
जिनोत्तमो मुनिर्बालः, शिष्यो मे मनुतामिमाम् ॥ ५ ॥

तत्र तावत् कवेः शिक्षा कीदृशीति जिज्ञासायां समुपलब्धविलक्षणकाव्यगिरः कवयितुं शिक्षा कथ्यते । कविशिक्षायां प्रथमश्छन्दोज्ञानमतीवावश्यकमिति तदेव वर्ण्यते ।

(१) छन्दसां लक्षणम्

यद् वाक्यरचनायां मात्राणां वर्णानाञ्च विशेषरूपेण गणना, लघुगुरुवर्णक्रमविचारः, विरामस्य (यतेः) गतेश्च नियमः समुपलभ्यते तदेव वाक्यं छन्दः संज्ञां लभते ।

(२) छन्दश्शब्दस्यार्थः

सान्तश्छन्दश्शब्दास्तावदर्थद्वयस्य वाचकः । तद्यथा—

(१) 'छदि आवरणे' धातुरस्ति, तस्मात् छदयति भावान् रसान् अलङ्कारादींश्च यत् तच्छन्दः । अनया च व्युत्पत्त्या छादनम् (आवरणम्) अर्थोऽस्य निस्सरति छद्-धातोरस्प्रत्ययो नुम् च भवतस्तदायं सिद्ध्यति ।

(२) अथापरञ्च व्याख्यानम्—'चदि आह्लादने' धातुरस्ति तस्मात् चन्दतीति छन्दः प्रतिपादितं भवति । अत्र धात्वादिचकारस्य निपातनात् छकारोऽस्प्रत्ययश्च पूर्ववदेव ज्ञातव्यः । एवञ्च आह्लादनम् (आनन्दनम्) अस्य शब्दस्यार्थः प्रसिद्ध्यति अर्थादाह्लादजनकं वास्य संघटनं छन्दः पदेन व्यवह्रियते ।

(३) छन्दसां भेदाः

यद्यपि छन्दांसि संस्कृतभाषायामनेकानि सन्ति तथापि तेषां मुख्यतया द्वावेव भेदौ स्तः। वेदेषु यानि छन्दांसि सन्ति तानि वैदिकानि, लोकेषु व्यवहारप्रयुक्तेषु प्रसिद्धानि लौकिकानि च कथ्यन्ते। अत्र च केवलं लौकिकछन्दसामेव लक्षणभेदोदाहरणानि विवेचनीयानि सन्ति। तत्र लौकिकछन्दसामपि मुख्यतया द्वावेव भेदौ वर्त्तेते। तद्यथा मात्रिकं वर्णिकञ्चेति। तदुक्तम्–

पिङ्गलादिभिराचार्य्यैः-, यदुक्तं लौकिकं द्विधा।
मात्रा वर्णविभेदेन, छन्दस्तदिह कथ्यते॥

पिङ्गलाद्याचार्य्यैः **लौकिकं** लोके प्रयुज्यमानं **मात्रावर्णविभेदेन**=आर्यादि तथा श्रीत्यादिभेदेन **द्विधा** द्विप्रकारकमुक्तम्।

केनाप्याचार्येण छन्दसस्त्रैविध्यमुक्तम्। तद्यथा–

आदौ तावद् गणच्छन्दो, मात्राच्छन्दस्ततः परम्।
तृतीयमक्षरच्छन्दश्छन्दस्त्रेधा तु लौकिकम्॥

आर्यादीनि गणच्छन्दांसि, वैतालादीनि मात्राच्छन्दांसि, वर्णक्रमवन्ति प्रमाणिकादीनि अक्षरच्छन्दांसीति। इह

प्रत्येकस्मिन् छन्दसि चतुर्थो भागः पादः, चरणः वा कथ्यते। अत्र कलिकालसर्वज्ञ**श्रीमद्हेमचन्द्रसूरीश्वर**विरचितं **छन्दोऽनुशासनसूत्रम्**–

"तुर्योऽशः पादोऽविशेषे" (११) छन्दसश्चतुर्थो भागः पादसंज्ञः अविशेषे=सामान्याभिधाने। यत्र तु द्विपदी, पञ्चपदी, षट्पदी, अष्टपदी चेति विशेषाभिधानं तत्र द्वितीयाद्यंशोऽपि पादः कथ्यते। उपर्युक्तमात्रिक-वर्णिक-छन्दसां संस्कारो नामकरणञ्च भिन्नप्रकारेण भवति।

(१) यस्मिन् छन्दसि पद्ये वा मात्राणां गणनां विधाय पादनिर्माणं भवति **तन्मात्रिकं छन्दः** (पद्यं) कथ्यते। अत्र प्रत्येकस्मिन् पादे (चरणे) वर्णाः समाना असमाना वा भवितुमर्हन्ति। इदञ्च मात्रिकं छन्दः जातिपदेनापि व्यवह्रियते। तदुक्तमाचार्यैः–"पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्त-जातिरिति द्विधा जातौ (मात्रिकछन्दसि) पादरचना मात्रागणानामनुसारेण क्रियते–अर्थादत्र मात्रा गण्यन्ते। यथा–आर्यादिषु भवति।"

(२) यस्य छन्दसः चतुर्ष्वपि च पादेषु लघु-गुरु वर्णानां क्रमभङ्गो न जायते–अर्थाद् वर्णगणनिर्देशो यत्र सम्यक्

संघटते तद् **वार्णिकं छन्दः** कथ्यते। एतदेव वृत्तं **वर्णवृत्तं** वेति नाम्ना प्रसिद्धमस्ति। वृत्तानां (वार्णिकछन्दसां) प्रत्येकं वर्णगणानुसारं वर्णानां गणनां विधाय रच्यते। यथा—इन्द्रवज्रायामुपेन्द्रवज्रायां मालिन्यादौ च।

(३) मात्रिक-वार्णिकछन्दसामुपभेदाः— उभयविधानामपि छन्दसां सामान्यतया त्रयस्त्रय उपभेदाः सन्ति। यथा—१. समम्, २. अर्धसमम्, ३. विषमञ्चेति।

१. समैः पादैः समम्। पादैश्चतुर्भिस्तुल्यलक्षणैः **समं** वृत्तं भवति। यत्र सर्वे पादाः (चरणाः) समानमात्राः, समानवर्णकाः वा सन्तः तुल्यलक्षणैश्चतुर्भिः पादैः रच्यन्ते तत् **समं छन्दः** कथ्यते। यथा—वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, दोधकं, मालिनीत्यादयः।

२. समार्धमर्धसमम्। यस्य तुल्ये अर्धे तदर्धसमं वृत्तं भवति, यथा—वैतालीयेत्यादि।

३. आभ्यामन्यद् **विषमं छन्दः** कथ्यते। यत्र भिन्नभिन्नमात्रावर्णसंख्यकाः सर्वे पादाः भवन्ति तद् **विषमं छन्दः** प्रतिपाद्यते। यथा—आर्यायाम्-उद्गाथादौ च। विषमछन्दसि प्रत्येकं पादः न्यूनाधिकवर्णको मात्रिको वा दृष्टो भवति। तदुक्तम्—

सममर्धसमं वृत्तं, विषमञ्चेति तत् त्रिधा ।
समं समचतुष्पादं, भवत्यर्धसमं पुनः ॥
आदिस्तृतीयवद् यस्य, पादस्तुर्यो द्वितीयवत् ।
भिन्नचिह्नचतुष्पादं, विषमं परिकीर्त्तितम् ॥

सरलार्थः– १. **समचतुष्पादं**=तुल्यचरणचतुष्टयं समं समनामकं पद्यम् । यथा–अनुष्टुपादि ।

२. यस्य पद्यस्य आदिः प्रथमपादस्तृतीयपादवत् एवं तुर्यश्चतुर्थपादो द्वितीयपादसदृशो भवति तदर्धसमं पद्यं भवति । यथा–वियोगिनी, हरिणी, सुन्दरी, उपचित्रं, प्लुतादि ।

३. भिन्न-भिन्न चतुष्पादम्, अर्थात् विभिन्नलक्षणपाद-चतुष्टयं **विषमं वृत्तं** भवति । यथा–उद्गता, ललितं, सौरभकमादि ।

अत्र वृत्तरत्नाकरकाराः

समवृत्तलक्षणम्–

अङ्घ्रयो यस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिताः ।
तच्छन्दः शास्त्रतत्त्वज्ञाः समं वृत्तं प्रचक्षते ॥

यथा–मात्रिके–धुम्रचलधृत्यादीनि, वर्णवृत्तेषु च प्रमाणिकादीनि **समं छन्दः** ।

अर्धसमलक्षणम्–

प्रथमाङ्घ्रिसमं यस्य, तृतीयश्चरणो भवेत् ।
द्वितीयस्तुर्यवद् वृत्तं, तदर्धसममुच्यते ।।

यथा–मात्रिकेषु वैतालीयेत्यादि, वर्णवृत्तेषु च उपचित्रादीति ।

विषमच्छन्दो लक्षणम्–

यस्य पादचतुष्केऽपि, लक्ष्मभिन्नं परस्परम् ।
तदाहुर्विषमं वृत्तं, छन्दशास्त्रविशारदाः ।।

यथा–मात्रिकेषु - आर्या, उद्गीतिरादि, वर्णवृत्तेषु च आपीडनम्, कालिकादिकञ्चेति ।

दण्डकलक्षणम्–

तदूर्ध्वं चण्डवृष्ट्यादि, दण्डकाः परिकीर्तिताः ।

अर्थात्–२६ षड्विंशत्यधिकवर्णवच्छन्दः दण्डकं भवति । दण्डसमानमधिकं लम्बं भवति तेन **दण्डकनाम** प्रसिद्धमस्ति । अथवा एतादृश महाच्छन्दसः पठने कवेः श्वासप्रश्वासो भवति तच्च दण्डप्रहार इव खेदजनकं जायते तेन दण्डकं नामास्य भवति । यथा अग्रे वक्ष्यते प्रचण्डवृष्टिप्रपातछन्दः २७ वर्णवृत्तम् । इदञ्च समवृत्तमेव भवति ।

छन्दो भेदप्रदर्शनतालिका—

छन्दः

- (१) मात्रिकं
  - समम् — अचलधृति
  - अर्धसमं — वैतालीयादि
  - विषमम् — आर्या उद्गाथा
- (२) वर्णिकं
  - समं
    - १. अनुष्टुप्
    - २. वसन्ततिलका
    - ३. स्रग्धरादि प्रमाणिका
  - अर्धसमं
    - १. वियोगिनी
    - २. हरिणी प्लुता
    - ३. उपचित्रा पुष्पिताग्रा
  - विषमम्
    - १. आपीडम्
    - २. कलिका
    - ३. उद्गता

१—साधारणं छन्दः— ३२ मात्रात्मिकं यावच्छन्दः, तत् सर्वं मात्रिकं कथ्यते ।

२—२६ वर्णात्मिकं यावच्छन्दस्तत् सर्वं वर्णिकं भवति ।

३—दण्डकच्छन्दः साधारणमर्यादामतिक्रम्याग्रे धावति, अर्थात् २६ मात्रावर्णविशेषमाप्नोति, तेन ततोऽधिकं दण्डकच्छन्दः कथ्यते ।

(४) लघु-गुरुवर्णज्ञानम्

छन्दोज्ञानं जिज्ञासूनां जनानां प्रथममक्षरज्ञानमवश्यमपेक्षितं भवति । व्याकरणशास्त्रे लौकिकवर्णशिक्षाक्रमे च अक्षरं द्विप्रकारकं भवति । यथा (१) स्वरः, (२) व्यञ्जनश्च । तत्र स्वरवर्णानां त्रयो भेदा भवन्ति । ते च क्रमशः ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतसंज्ञकाः प्रसिद्धाः । तद्यथा–

(१) एकमात्रिको वर्णः **ह्रस्वो (लघुः)** भवति । यथा–'अ इ उ ऋ लृ' इति ।

(२) द्विमात्रिको वर्णः **दीर्घः (गुरुः)** कथ्यते । यथा–'आ ई ऊ ॠ ॡ ए ऐ ओ औ' इति ।

(३) त्रिमात्रिकास्तु प्लुतोऽधिका वा वर्णाः प्लुतसंज्ञकाः प्रसिद्धा भवन्ति । यथा–'अ३ इ३ उ३' इत्यादि ।

(५) मात्राज्ञानम्

मात्रा भेदावुभौ ख्यातौ छन्दश्शास्त्रे विशेषतः । तत्र तावन्मात्रा शब्दार्थविषये काव्यशास्त्राभ्यासवतां सम्प्रदाये कथितमस्ति । मात्राशब्दस्यार्थः–

१. व्याकरणशास्त्रे मात्राशब्देन अकारस्वरस्योच्चारकालो गृह्यते ।

२. अक्षिस्पन्दनप्रमाणकः कालविशेषो मात्रा। नेत्र-निमीलनोन्मीलने यावान् समयो व्यतीतो भवति तावान् समयः मात्राशब्देन बोधव्यः।

इत्थं प्रदर्शितरीत्या एकमात्रिकः स्वरस्तत्सहितं व्यञ्जनं वा ह्रस्वसंज्ञको भवति स च लघुः। द्विमात्रिकः दीर्घसंज्ञको भवति। स च गुरुः। त्रिमात्रिकस्ततोऽधिका वा प्लुताः कथ्यन्ते। किन्तु छन्दश्शास्त्रे लघुगुरुभेदेन मात्राया द्वावेवभेदौ स्तः। ननु व्याकरणशास्त्रवत् प्लुतानामत्र पृथग्ग्रहणं क्रियते। तेषामपि गुरावेवान्त-र्भावः क्रियते इति ज्ञेयम्। एवञ्च ह्रस्वस्वरस्तत् संयुक्तव्यञ्जनं वा लघुर्ज्ञेयः। तद्यथा—छन्दोऽनुशासने ह्रस्वो ऋजुः। ह्रस्वो मात्रिको वर्ण 'ल्' लघुसंज्ञो भवति स च प्रस्तारे ऋजुः (।) स्थाप्यः। दीर्घस्वरस्तत्संयुक्त-व्यञ्जनञ्च गुरुपदेन बोधव्यः। तदुक्तं छन्दोऽनुशासने-दीर्घप्लुतौ=द्विमात्रत्रिमात्रौ वर्णौ ग् (गुरु) संज्ञौ भवतः वक्रौ (ऽ) च। लघुस्वरात् परं क्वचिदनुस्वारो विसर्गो वा आयाति, अथवा संयुक्ताक्षरमग्रे समायाति तदापि लघु वर्णाः गुरुसंज्ञका एव बोधव्या भवन्ति।

अत्र छन्दोऽनुशासनसूत्रम्

“)(क ⌒ प विसर्ग अनुस्वारव्यञ्जनाह्लादि संयोगे”

[   ] जिह्वामूलीये, उपध्मानीये, विसर्जनीये, अनुस्वारे, व्यञ्जने ह्रादि वर्जिते च परे ह्रस्वोऽपि गो भवति वक्रश्च। तथा गुरुलक्षणबोधकं पद्यान्तरम्—

संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रम्।
विज्ञेयमक्षरं गुरु, पादान्तस्थं विकल्पेन॥

एतदतिरिक्तमक्षरं लघुसंज्ञकं भवतीति सारः।

एवञ्च अनुस्वारसंयुक्तो ह्रस्ववर्णः—

जिनं, मुनिं, गुरुं, — इत्यादौ क्रमशः —
नं, निं, रुं, इति गुरुसंज्ञको ज्ञेयः।

विसर्गसंयुक्तश्च—
जिनः, मुनिः, गुरुः, इत्यादौ
नः, निः, रुः, —गुरुरेव बोधव्यः।

संयुक्ताक्षरादिश्च—
तुष्टि, पुष्टि, ऋद्धि, वृद्धि, सिद्धि इत्यादौ—
तु, पु, ऋ, वृ, सि गुरुर्मन्यते।

उपरि उल्लिखिताः सर्वे वर्णाः गुरवः सन्ति।

एवमेव पादान्तस्थो लघुरपि आवश्यकतया च गुरुर्भवति। तदुक्तं पादान्तस्थं विकल्पेन। अत्र च छन्दो-

ऽनुशासनसूत्रम्–"वान्ते ग् व ऋ:" पादान्ते वर्त्तमानो ह्रस्वो ग संज्ञको भवति स च प्रस्तारे वक्रः स्थाप्यते । वंशस्थादौ च पादान्तस्थो लघुर्गुरुर्न जायते इति कवि-सम्प्रदायः । तदुक्तं छन्दश्शास्त्रविशारदैः–

वंशस्थकादिचरणान्तनिवेशितस्य,
गत्वं लघोर्नहि तथा श्रुतिशर्मदायि ।
श्रोतुर्वसन्ततिलकादिपदान्तवर्त्ति-
त्वो गत्वमत्रविहितं विबुधैर्यथा तत् ।।

संयुक्ताक्षरादिर्लघुरपि गुरुर्भवतीति नियमः, किन्त्वत्र वृत्तरत्नाकरकारोऽन्यथा वक्ति । यथा–

पादादाविह वर्णस्य, संयोगः क्रमसंज्ञकः ।
पुरः स्थितेन तेन स्याद्, लघुतापि क्वचिद् गुरोः ।।

अर्थात् संयुक्तपरस्य विषये क्वचिदपवादो बोधव्यः । तत्र च स्वेच्छया गुरु मन्तव्यम् । यथा–

तरुणं सर्षपशाकं-नवोदनं पिच्छिलानि च दधीनि ।
अल्पव्ययेन सुन्दरि ! ग्राम्यजनो मिष्टमश्नाति ।।

अस्मिन् पद्ये **सुन्दरि** ! अत्र यदि नियमः प्रवर्त्तेत तदा-रिकारस्य गुरुत्वेन मात्राधिक्यं स्यादतः नियम उल्लङ्-

घ्यते। किन्तु "गुणिनामपि निजरूप-प्रतिपत्तिः परत एव स भवति। स्वमहिमदर्शनमक्ष्णोर्मुकुलतले जायते यस्मात्॥" इत्यत्र प्रथमचरणे रूपस्य प्रकारे नियमः प्रवर्तते तेन च मात्राया न्यूनत्वं न भवति। अन्यथा एकादश मात्रा एव जायन्ते न तु द्वादश मात्रा गणयित्वा दृश्यताम्।

(६) युगायुक् संज्ञे

'युक् समं विषमञ्चायुक् स्थानं सद्भिर्निगद्यते।'

सारांशः– समं द्वितीय-चतुर्थादिस्थानं सद्भिः युक् कथ्यते। विषमञ्च अर्थात् प्रथम-तृतीयादि स्थानं सद्भिः अयुक् निगद्यते। चकारात् समस्य युग्म, अनोजसंज्ञेऽपि स्तः। विषमस्य अयुग्म ओजसंज्ञे भवत इति बोध्यम्। आसां संज्ञानां प्रयोगः पादस्य सम विषमता बोधनायैव प्रायः क्रियते।

(७) गणज्ञानम्

छन्दश्शास्त्रे वर्णमात्रासहकृतमेव गणज्ञानं प्रदर्शितं भवति। कस्यापि छन्दसः (पद्यस्य) रचनायां गणज्ञानमत्यावश्यकमेव भवति। गणोऽपि द्विविधो भवति। १. मात्रागणः, २. वर्णगणश्च।

प्रथमं वर्णगणज्ञानाय तदेव प्रस्तूयते–

गणपदेनात्र वर्णत्रयसमुदायविशेषस्य ग्रहणं क्रियते, नाधिकस्य नापि न्यूनस्य वा। प्रत्येकस्मिन् गणे त्रीणि-त्रीणि अक्षराणि मन्यन्ते ध्रियन्ते च। अतोऽक्षरत्रय-समुदायभेदादष्टौ गणाः इह प्रख्याताः भवन्ति। अष्ट-स्वपि गणेषु लघुगुरुवर्णभेदेन परस्परं भिन्नता स्पष्टतरा दृश्यते। गणानां प्रस्तारक्रियायां लघ्वक्षरसङ्केतः सरलरेखा धर्तव्या। यथा–'।' इति लघुचिह्नं भवति। तथा गुरुवर्णज्ञानाय वक्ररेखा (अवग्रहचिह्नमिति यावत्) धर्तव्या। यथा–'ऽ' इति गुरुवर्णसङ्केतः प्रसिद्ध एव। तदुक्तमस्त्याभाणकम्–

वक्ररेखा गुरोश्चिह्नं, सरला च लघोस्तथा।
गुरुरेको गकारः स्यात्, लकारो लघुरेककः॥

अर्थात्–वक्ररेखा 'ऽ' गुरुचिह्नं ज्ञेयम्। सरला च रेखा '।' लघुचिह्नं ज्ञेयं रक्षणीयञ्च। तथा–ग मात्र कथनेन एकगुरुवर्णस्य बोधः, गौ कथनेन द्वयोर्गुर्वो-र्ग्रहणं जायते। एवमेव 'ल' मात्र कथनेन एकस्य लघो-र्वर्णस्य ज्ञानं, 'लौ' कथनेन द्वयोर्लघ्वोर्वर्णयोर्बोधो भवति। एवञ्च लघुगुरुवर्णविन्यासजन्यगणभेदेन गणाः अष्टौ

प्रख्याताः, प्रयुज्यन्ते च वृत्तात्मके छन्दसि। एतदेव पद्यमुखेन प्रदर्शितं भवति—

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो
भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतोरलमध्यः,
सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥

सरलार्थ :—

१. यस्मिन् गणे अर्थात् वर्णत्रयसमुदाये त्रयोऽपि वर्णाः गुरवो भवन्ति स '**मगणः**' कथ्यते।

२. यस्मिन् वर्णत्रयसमुदाये त्रयोऽपि वर्णाः लघव एव भवन्ति स '**नगणः**' भवति।

३. यत्र समुदाये प्रथमो वर्णः गुरुर्भवति द्वितीयस्तृतीयश्च लघू भवतः स '**भगणः**' कथ्यते।

४. यस्मिन् वर्णत्रयसमुदाये प्रथमो वर्णो लघुरस्ति अन्यौ च गुरू भवतः स '**यगण**' नाम्ना प्रसिद्ध्यति।

५. यस्मिन् समुदाये प्रथमो वर्णो लघुः द्वितीयो गुरुः पुनस्तृतीयश्च लघुरेव तिष्ठति स '**जगणः**' प्रसिद्धो भवति।

६. यत्र च प्रथमो वर्णो गुरुस्तत् पश्चाद् लघुस्ततश्च गुरुरेव दृश्यते स '**रगणः**' कथ्यते ।

७. यत्र च प्रथम-द्वितीयौ लघू स्तः, तृतीयश्च गुरुः स '**सगणः**' प्रतिपाद्यते ।

८. एवमेव वर्णत्रयसमुदाये प्रथम-द्वितीयौ गुरू भवेत-स्तृतीयश्च लघुरस्ति स '**तगणः**' कथ्यमानो भवतीति व्यवस्थापितं छन्दोविद्भिः ।

एतेषामेवाष्टानां गणानां लक्षणप्रतिपादकं कविश्री कालिदासस्य पद्यान्तरमप्यवलोकनीयम्–

आदिमध्यावसानेषु, भजसा यान्ति गौरवम् ।
यरता लाघवं यान्ति, मनौ तु गुरुलाघवम् ।।

अस्य सरलार्थः–भगण-जगण-सगणाः क्रमेण आदि-मध्याऽवसानेषु गुरुवर्णका भवन्ति । यगण, रगण, तगणाश्च अनुक्रमेण आदि-मध्यावसानेषु लघुवर्णका भवन्ति । मगणे त्रयोवर्णा गुरवो जायन्ते तथा नगणे च त्रयोवर्णा लघवः प्रभवन्तीति हृदयम् । इत्थं प्रदर्शिताऽष्टगणज्ञानाय किञ्चिदन्यदपि लक्षणं छन्दोज्ञानवतां सम्प्रदाये प्रसिद्धयति । यथा–"**यमाताराजभानसलगम्** ।।'

अस्मिन् लघावेवैकवाक्ये सर्वेषां गणानां नामानि

लक्षणानि च निर्दिष्टानि सन्ति । यथा—१. यगणः २. मगणः ३. तगणः ४. रगणः ५. जगणः ६. भगणः ७. नगणः ८. सगण इति आदितोऽष्टाक्षराणि गृहीत्वा नामान्यागतानि तत्पश्चात् लवर्णेन लघुः गवर्णेन गुरुरिति करणीयमिति निर्दिष्टमस्ति ।

अत्र प्रथमाक्षरमादायवर्णत्रयपर्यन्तं—**'यमाता'** इत्याकारो भवति । अत्र प्रथमाक्षरं लघुरन्यौ च गुरु वर्त्तेते एतदेवलक्षणमस्य यगणस्येति बोध्यम् । एवमेव द्वितीयाक्षरमादाय ततस्तृतीयवर्णपर्यन्तं **'मातारा'** इत्याकारो जायते । अत्र वर्णत्रयो गुरवः सन्ति तस्मात् मगणो सर्वे वर्णा गुरवः भवन्तीति बोध्यम् । एवमेवोत्तरक्रमेण त्रयस्त्रयो वर्णाः स्वस्वनामलक्षणानि ज्ञापयन्तीति ।

(८) अथ मात्रागणाः

मात्रिकछन्दस्यपि प्रत्येकपादस्य मात्रा गणनीया, **अतः** प्रत्येकमात्रिकपद्येऽपि गणानां गणना कर्तव्यैव । अत्र च मात्रिकच्छन्दसि चतसृणां मात्राणामेको गणो जायते इति विशेषताऽस्ति । अस्मिन्नपि वर्णिकछन्दोवत् ह्रस्वस्यैका मात्रा, दीर्घस्य वर्णस्य द्वे मात्रे भवतः । क्रमेण च लघुगुरू भवतः । अर्थादेकमात्रिको वर्णो लघुः, द्विमात्रिकश्च गुरुर्जायते । मात्रिकगणानां नामानि चिह्नानि च निम्न-

प्रकारेण ज्ञेयानि । १. 'मगणः' सर्वगुरुः [SSS], २. 'नगणः' सर्वलघुः [।।।], ३. 'भगणः' आदिगुरुः [S।।], ४. 'जगणः' मध्यगुरुः [।S।], ५. 'सगणः' अन्त्यगुरुः [। । S], अत्र पञ्चैव गणाः स्वीक्रियन्ते ।

मात्रागणविषये छन्दोऽनुशासनमतम्

"द्वि त्रि चतुः पञ्च षट् कला दतचपषा द्वि त्रि पञ्चाष्ट त्रयोदशभेदा मात्रागणाः ॥ सूत्रम् ॥"

व्याख्या–कला=मात्रा द्विकलो 'दसंज्ञः'। त्रिकलः 'तसंज्ञः'। चतुष्कलः 'चसंज्ञः'। पञ्चकलः 'पसंज्ञः'। षट्कलः 'षसंज्ञः'। इति 'द्वि त्रि चतुः पञ्च षण्णाम्' प्रतीकेन 'कृ तृ रा स दिवादरः' इत्यादिवत् दादि संज्ञा मात्रा गणाः । ते च यथासङ्ख्यं द्वि त्रि पञ्चाष्ट त्रयोदश-भेदाः ।

तत्र दगणो द्विभेदः –[S. ।।.]

तगणस्त्रिभेदः –[।S. S।. ।।।]

चगणः पञ्चभेदः –[SS. ।।S. ।S।. ।।S. ।। ।।.]

प गणः –[।SS. S।S. ।।।S. SS।. ।।S।. ।S।।. S।।।. ।।।।. इत्यष्टभेदः ।]

षगण: –[SSS. IISS. ISIS. SIIS. IIIIS. ISSI. SISI IIISI. SSII. IISII. ISIII. SIIII. IIIIII. इति त्रयोदशभेदा:]

मात्रिकगणानां पुष्टिकरा: संग्रहश्लोका: –

सर्वग: सर्वलो दस्त:, –आदिमान्तिम सर्वल: ।
सर्वान्त-मध्यमाद्यग् च:, समस्तलो मतश्च स: ।।

प आद्यन्तर्लघुग्लान्त:, स्यादुपान्त्य गुरु: स च ।
आद्युत्तरगुरु: सोऽपि, गुर्वादि: सर्वलोपि च ।।

ष: सर्वगोद्‍वाद्यल: स्यादाद्योपान्त्यलघुस्तथा ।
आद्यान्तिमगुरुश्चैव, पर्यन्त गुरुरेव च ।।

आद्यन्तल उपान्त्याद्यग उपान्त्य गुरुस्तथा ।
द्‍वाद्यगो मध्यगश्चाद्युत्तरगादिश्च सर्वल: ।।

अथ पूर्वोक्त वर्णगणनामष्टानां स्वरूपबोधकं चक्रम् (तालिका)

❀ गणज्ञानाय चक्रम् ❀

नाम	१ मगण:	२ नगण:	३ भगण:	४ यगण:	५ जगण:	६ रगण:	७ सगण:	८ तगण:
चिह्नम्	SSS	III	SII	ISS	ISI	IIS	IIS	SSI

एतेषामष्टानामपि गणानां देवता, स्वरूपं तत्फलञ्च निम्नलिखितरूपेण बोध्यम्–

भो भूमिस्त्रिगुरुः श्रियं दिशति यो वृद्धिं जलं चादिलो ,
रोऽग्निर्मध्यलघुर्विनाशमनिलो देशाटनं सोऽन्त्यगः ।
तो व्योमान्तलघुर्धनापहरणं जोऽर्कोरुजं मध्यगो ,
भश्चन्द्रोयश उज्ज्वलं मुखगुरुर्नोनाक आयुस्त्रिलः ।।

श्लोकार्थः–

१. **मगणस्य** देवता भूमिः (पृथ्वी), तत्फलं श्रीः (लक्ष्मी) भवति, स च त्रिगुरुः स्थाप्यते ।

२. **यगणस्य** देवता जलं, तत्फलं वृद्धिर्भवति, स चादि लघुः स्थाप्यते ।

३. **रगणस्य** देवता अग्निः, तत्फलं विनाशो भवति, स च मध्यलघुर्जायते ।

४. **सगणस्य** देवता वायुः, तत्फलञ्च भ्रमणं भवति । अयमन्त्यगुरुर्भवति ।

५. **तगणस्य** देवता व्योम (आकाशः) फलं धननाशः अयमन्तलघुर्भवति ।

६. **जगणस्य** सूर्यो देवता, तत्फलञ्च रोगप्राप्तिः । अयं मध्यगुरुः स्थाप्यते ।

७. **भगणस्य** देवता चन्द्रः, तत्फलञ्च प्रकाशं यशो-लाभश्च । अयमादिगुरुर्भवति ।

८. **नगणस्य** देवता नाकः (स्वर्गः), फलञ्चास्य वृद्धि-र्जायतेऽयं त्रिलघुः स्थाप्यते ।

गणनामस्वरूपदेवताफलानाञ्च ज्ञानाय चक्रम्
(तालिका)

क्रमाङ्क	गणनाम	स्वरूपम्	लक्षणम्	देवता	फलम्
१	मगणः	SSS	गुरुत्रयः	पृथ्वी	लक्ष्मीः
२	यगणः	ISS	आदिलघुः	जलम्	वृद्धिः
३	रगणः	SIS	मध्यलघुः	अग्निः	विनाशः
४	सगणः	IIS	अन्त्यगुरुः	वायुः	भ्रमणम्
५	तगणः	SSI	अन्त्यलघुः	आकाशः	धननाशः
६	जगणः	ISI	मध्यगुरुः	सूर्यः	रोगप्राप्तिः
७	भगणः	SII	आदिगुरुः	चन्द्रः	कीर्त्तिः
८	नगणः	III	सर्वलघुः	नाकः	आयुः

(६) यति-गत्योर्ज्ञानम्

कस्यापि छन्दसः अर्थात् पद्यस्य पठनाय तदुच्चारण-

प्रकारो निश्चितो भवति। प्रत्येकं छन्दो भिन्न-भिन्न-प्रकारेण पठ्यते येन श्रोतृणामानन्दवर्धनं जायते। भावाभिव्यक्तिश्च शीघ्रं सम्पद्यते। तदुक्तमाचार्येण—

यतिर्जिह्वेष्ट विश्रामस्थानं कविभिरुच्यते।
सा विच्छेदविरामाद्यैः, पदैर्वाच्या निजेच्छया॥

जिह्वाया इष्टं विश्रामस्थानं स्थितिस्थानं कविभिर्यतिः कथ्यते। सा यति निजेच्छया बोधव्येति कस्यचिन् मतम्। अत्र केचिदन्येविद्वांसः प्राहुः—

एवं यथा यथोद्वेगः, सुधियां नोपजायते।
तथा तथा मधुरता - निमित्तं यतिरिष्यते॥

अर्थाद्—यतिनिर्देशे सुश्रवता भवेत् सा यतिरादरणीयैव। तदुक्तम्—

श्लोकेषु नियतस्थाने, पदच्छेदं यतिं विदुः।
तदपेतं यतिभ्रष्टं, श्रवणोद्वेजनं यथा॥

तदेवं सर्वसारो निस्सरति श्लोकानां पठनकाले तत्तच्छ्लोक-लक्षणानुसारं यतिः (विरामः विश्रामो वा) विधेयैव।

प्रत्येकछन्दो लक्षणे प्रायशो निर्दिष्टमेव भवति यदस्मिन् पद्येऽमुकामुकस्थाने यतिर्विधेयेति। यथा—

'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गो ,
यस्यां क्रिया षट्प्रमितैर्विरामः ।'

अर्थात् यत्र क्रिया पञ्चमेऽथ षष्ठेऽक्षरे विरामो भवति तदिन्द्रवज्रानामकं छन्दो जानीयात् । इत्थमेवान्यस्मिन्नपि छन्दसि यतिः कर्तव्येति सर्वत्र निर्दिष्टं वोभवीति ।

यतिविचारे छन्दोऽनुशासनसूत्रम्–

'श्रव्यो विरामो यतिः' । १६ । स श्रुतिसुखो यतिसंज्ञः । सा च तृतीयान्तेषु गद्यादिनिर्देशेषु उपतिष्ठते । गादयश्च साकाङ्क्षत्वात् यतिरित्यनेन संवध्यन्ते । तेन गाद्यवच्छिन्नैरक्षरैर्यतिः क्रियते इत्ययमर्थः सिद्धचति । तत्रैषा यत्युपदेशोपनिषत् पठितास्ति ।

यतिः सर्वत्र पादान्ते, श्लोकार्द्धे तु विशेषतः ।
गादिच्छिन्नपदान्ते च, लुप्तालुप्तविभक्तिके ।।

अत्र नियमविशेषोऽपि–

१. परादिवद्भावविषये अन्तादिवद्भावविषये च यतिर्नेष्टा भवति ।

२. चादिभ्यः पूर्वं यतिर्न कर्तव्या ।

३. प्रादिभ्यः परं यतिर्न कर्तव्या । उदाहरणं गवेषणीयं ग्रन्थभूयंस्त्वान्नेह दीयते ।।

गतेरर्थो भवति प्रवाहः । अर्थात् पद्योच्चारणं कथं कीदृक् प्रवाहपूर्वकं विधेयमिति ज्ञानम् । अर्थात् कस्यापि पद्यस्य कीदृशोच्चारणप्रवाह इति विज्ञाय सावधानं पद्यं पठनीयं कुत्रापि ।

।। इतिश्री शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्त्ति-तपोगच्छाधिपति - भारतीयभव्यविभूति-अखण्डब्रह्मतेजोमूर्ति - चिरंतन-युगप्रधानकल्प - सर्वतन्त्रस्वतन्त्र - श्रीकदम्बगिरिप्रमुखानेक-प्राचीनतीर्थोद्धारक-पञ्चप्रस्थानमयसूरिमन्त्रसमाराधक - परम पूज्याचार्यमहाराजाधिराज - **श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वराणां-** पट्टालंकार - साहित्यसम्राट् - व्याकरणवाचस्पति - शास्त्र-विशारद - कविरत्न - साधिकसप्तलक्षश्लोकप्रमाण नूतन-संस्कृतसाहित्यसर्जक - परमशासनप्रभावक - निरुपमव्याख्यानामृतवर्षि बालब्रह्मचारि - परमपूज्याचार्यप्रवर **श्रीमद्-विजयलावण्यसूरीश्वराणां** पट्टधर-धर्मप्रभावक-व्याकरणरत्न-शास्त्रविशारद-कविदिवाकर-देशनादक्ष- बालब्रह्मचारि-परम-पूज्याचार्यदेव-**श्रीमद्विजयदक्षसूरीश्वराणां** - पट्टधर-जैनधर्म-दिवाकर-शासनरत्न-तीर्थप्रभावक- राजस्थानदीपक - मरुधर-देशोद्धारक-शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न-कविभूषणेति-पदसम - लङ्कृतेन **श्रीमद्विजयसुशीलसूरिणा** विरचितायां **छन्दोरत्न-मालाया**मावश्यकवस्तुपरिचयात्मकः प्रथमः स्तबकः

।। समाप्तः ।।

द्वितीयः स्तबकः

अथ मात्रिकच्छन्दसां प्रकरणम्

छन्दसां ज्ञानाय प्रसिद्धपिङ्गलशास्त्रे छन्दोऽनुशासनादि ग्रन्थे चानेकच्छन्दसां वर्णनं विद्वत्समाजे पठन-पाठनादौ च नितरां प्रसिद्धमस्ति। तेभ्यः स्वपरसम्प्रदायग्रन्थेभ्यः समुद्धृत्य प्रचलितानामत्यन्तोपयोगिनां छन्दसां पठनक्रियोपयोगायात्र सरलतया रीत्या सविवेचनं सोदाहरणञ्च लक्षणादिकमुच्यते।

तत्र तावत् सामान्यतया सर्वत्र छन्दो द्विप्रकारेण वर्णितं भवति—१. मात्रागणनानियमबद्धं, २. वर्णगणनानियमबद्धञ्च। यद्यपि छन्दशास्त्रमर्मज्ञैः कियद्भिर्विद्वद्भिश्छन्दसां त्रयो भेदाः दर्शिताः सन्ति। यथा—

आदौ तावद् गणच्छन्दो, मात्राच्छन्दस्ततः परम्।
तृतीयमक्षरच्छन्द-स्त्रेधा भवति वर्णनम्॥
आर्याद्युद्गीतिपर्यन्तं, गणच्छन्दः समीरितम्।
वैताल्यादिचूलिकान्तं, मात्राच्छन्दः प्रकीर्तितम्॥
सामान्याद्युत्कृतिं यावदक्षरच्छन्द एव च॥

तथापि वृत्तरत्नाकराद्याचार्यमतेन मात्रावर्णभेदेन छन्दसां द्वैविध्यमेव दर्शितमस्ति पद्यमुखेन । यथा–

रत्नाकरमते छन्दो, द्विविधं वर्णितं सदा ।
आर्यादेर्मात्रिकेष्वेव, अन्तर्भावो विधीयते ।। इति

अथ मात्रिकाशिक्षणे मात्राया एव प्राथम्यं । तेनात्र प्रथमं मात्रा छन्दसामेव लक्षणादिकं दातुमुचितमस्ति । तेष्वपि आर्याछन्दसः परमप्रसिद्धत्वेन तस्यैव लक्षणं प्रथमं प्रस्तूयते ।

आर्यायाः सामान्यलक्षणं शास्त्रग्रन्थे–

लक्ष्मै तत् सप्तगणाः गोपेता भवति नेह्विषमे जः ।
षष्ठोऽयं न लघू वा, प्रथमेऽर्द्धे नियतमार्यायाः ।।
षष्ठे द्वितीयत्वात् परके, त्वे मुखत्वाच्च स यति पदनियमः ।
चरमेऽर्द्धे पञ्चमके, तस्मादिह भवति षष्ठो त्वः ।।

सारांशः–आर्यायाः पूर्वार्द्धे–अर्थात् प्रथमद्वितीयपाद-पर्यन्तं, चतुर्मात्रावन्तः सप्तगणाः भवन्ति, अन्ते च एको गुरुवर्णो भवति । अत्र विषमगणेऽर्थात्–[१-३-५-७] एक-तृतीय-पञ्चम-सप्तमगणेषु जगणो [मध्यमगुरुः] नैव ध्रियते, किन्तु षष्ठो गणः जगणः अथवैकलघुवर्ण-सहितो नगणो भवितुमावश्यकं भवति । यदि षष्ठोगणः

सलघुनगणो भवेत् तदा प्रथम लघूपरि यतिरपेक्ष्यते। एवं सप्तमो गणः सलघुनगणः स्यात् तदा षष्ठगणस्यान्ते यतिः कर्त्तव्येति नियमः। इति पूर्वार्द्धे नियमः। उत्तरार्द्धे– अर्थात्–तृतीयचतुर्थचरणयोः यदि पञ्चमोगणः सलघु-नगणश्चेत् तदा चतुर्थगणस्यान्ते यतिः कर्त्तव्या। तदुत्तरं षष्ठोगण एकलघुवर्णमात्रक एव भवति। तस्मादेवोत्तरार्द्धे पूर्वार्द्धतः तिस्रो मात्राः न्यूना जायन्ते। एतदेव छन्दोऽनु-शासने कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्यकृत ग्रन्थेऽपि कथित-मिति। यथा–"चृ गौ च गण सप्तकं, गुरुश्चार्द्धे यस्या साऽऽर्या। अपरेऽर्द्धे षष्ठो गणो न त्वद्युकार्यः।"

उदाहरणम्–

उपदिश्यते तव हितं,
वाञ्छसि कुशलमात्मनो नित्यम्।
मा जातु दुर्जनजने,
स्वार्याचरितं प्रपद्यस्व॥

महाकविश्रीकालिदासकृत श्रुतबोधेऽपि आर्याछन्दसो-ऽतिसरलं प्रसिद्धतमं प्राञ्जलं लक्षणम्–

यस्याः प्रथमे पादे, द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या॥४॥

संस्कृतार्थ :–यस्य प्रथमे तृतीये च पादे [चरणे] द्वादश २ मात्राः, द्वितीये पादेऽष्टादश मात्राः, तथा चतुर्थ-पादे पञ्चदशमात्रा भवन्ति तत् आर्यानामकं मात्रिकछन्दो भवति । [मात्रिकश्लोकेऽपि मात्रागणनासमये लघु-वर्णस्यैका मात्रा, गुरुवर्णस्य च द्वे मात्रे इति पूर्वोक्तं वचः सर्वदा हृदि रक्षणीयम् ।]

स्पष्टार्थ :–आर्या छन्दसि–१. प्रथमे चरणे (१२) द्वादशमात्राः । २. द्वितीये चरणे (१८) अष्टादश-मात्राः । ३. तृतीये चरणे [१२] द्वादशमात्राः । ४. चतुर्थे चरणे [१५] पञ्चदशमात्राः भवन्ति ।

इदं लक्षणात्मकं पद्यमपि आर्याछन्दसि रचितमस्ति । यतोऽत्रापि लक्षणं संघटतेऽतोऽस्योदाहरणमपि भवितुमर्हति । तथापि पद्यान्तरमुदाहरणं प्रस्तूयते–

शिवमस्तु सर्वजगतः, परहित-निरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवन्तु लोकाः ।।

[इति बृहच्छान्तिस्मरणे (स्तोत्रे) प्रोक्तम्]

अस्य च आर्याछन्दसो नवभेदाः प्रभवन्ति । यथा–

पथ्या विपुला चपला मुखचपला जघनचपला ।
गीत्युपगीत्युद्गीतयः आर्यागीतिश्च नवधाऽऽर्या ।।

अत्र १. पथ्या, २. विपुला, ३. चपला, ४. मुख-चपला, ५. जघनचपला, ६. गीतिः, ७. उपगीतिः, ८. उद्गीतिः, ९. आर्यागीतिरिति च ।

(१) एतेषु नवभेदेषु प्रथमभेदपथ्यायाः लक्षणम्–

त्रिष्वंशकेषु पादो दलयोराद्येषु दृश्यते यस्याः ।
पथ्येति नाम तस्याश्छन्दोविद्भिः समाख्यातम् ।।

अन्वयः–यस्याः दलयोः आद्येषु त्रिषु अंशकेषु पादो दृश्यते छन्दोविद्भिस्तस्याः पथ्येति नाम समाख्यातम् । यस्याः आर्यायाः उभयोरपि भागयोः आद्येषु–प्रथमेषु त्रिषु=त्रिसंख्येषु अंशकेषु भागेषु गणेषु इत्यर्थः, पादः श्लोकचतुर्थ-भागः दृश्यते=विलोक्यते । अर्थात् तृतीयगणान्ते द्वादश-मात्रान्ते पादः समाप्तो भवति तस्या आर्याया नाम पथ्या, इति छन्दोविद्भिः समाख्यातं कथितम् ।। लक्षणमेतत् सामान्यार्याया लक्षणान्तर्गतमेव । तच्च यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रा इत्यादि शब्देन पूर्वं व्याख्यातमेवास्ति-नात्र किञ्चिद् वैशिष्ट्यम् ।

अत्रापि प्रथमे तृतीये च पादे द्वादशमात्रासु विरामः पादसमाप्तिश्च जायते तदैव चतुर्मात्रात्मकं गणत्रयं सम्भ-

वति। अन्यत् सर्वमेव सामान्यार्यावदेव द्वितीय चतुर्थ-पादयोर्भवति ।

अथोदाहरणं प्रस्तूयते पथ्यायाः—

पथ्याशी व्यायामी ,
स्त्रीषु जितात्मा नरो न रोगी स्यात् ।
यदि मनसा वचसा च ,
द्रुह्यति नित्यं न भूतेभ्यः ॥

अथवा—जय जय नाथ मुरारे, केशव कंसान्ताच्युतानन्त ।
कुरु करुणामिति भणितिः, पथ्या भवरोग दुःखानाम्॥

(२) विपुलालक्षणम्—

संलङ्घ्य गणत्रयमादिमं ,
शकलयोर्द्वयोर्भवति पादः ।
यस्यास्तां पिङ्गलनागो ,
विपुलामिति समाख्याति ॥

सरलार्थः—द्वयोः शकलयोः (भागयोः) आदितो गण-त्रयमुल्लङ्घ्य, अर्थात् द्वादशमात्रातः पश्चात् पादविश्रामः स्यात्, तदा तां श्रीपिङ्गलाचार्यो नाम्नीमार्यां भाषते । इदं लक्षणमेवोदाहरणमस्य । गणयित्वा पश्यत, अत्र द्वादश-

मात्रातः पश्चात् पादविरामो भवति। तथाप्युदाहरणान्तरम्–

मुख विपुला पर्यन्ते च, लघीयां सो भवन्ति नीचानाम् ।
वर्षासु ग्राम - पयः, प्रवाहवेगा इव स्नेहाः ।।

अत्र द्वादशमात्रानन्तरं यतिर्भवति ।

(३) चपलालक्षणम्–

उभयार्द्धयोर्जकारौ, द्वितीय-तुर्य्यौ गमध्यगौ यस्याः ।
चपलेति नाम तस्याः, प्रकीर्तितं नागराजेन ।।

अन्वयः–यस्या उभयार्धयोः द्वितीय-तुर्यौ गमध्यगौ जकारौ (स्याताताम्) तस्याः नागराजेन चपलेति नाम प्रकीर्तितम् ।

सारांशः–अर्थात् यस्या आर्यायाः द्वयोरपि खण्डयोः (पूर्वार्द्धे उत्तरार्द्धे च) द्वितीयश्चतुर्थश्च गणाः जगणो मध्यगुरुर्भवति सा चपलेति नाम्ना प्रसिद्धा भवति ।

उदाहरणम्–

चपला न चेत् कदाचिद्–
नृणां भवेद् भक्तिभावना कृष्णे ।
धर्मार्थ-काम-मोक्षा–
स्तदा करस्था न सन्देहः ।।

स्पष्टता—चतसृणां २ मात्राणामेको गणो भवति एवश्चात्र पूर्वार्द्धे "नचेत्क" "नृणां भ" इति द्वावपि जगणौस्तः एवमुत्तरार्द्धेऽपि "र्थकाम" "तदाक" इति जगणावेव स्तः ।

(४) मुखचपलालक्षणम्—

आद्यं दलं समस्तं, भजेत लक्ष्म चपलागतं यस्याः ।
शेषे पूर्वजलक्ष्मा, मुखचपला सोदिता मुनिना ।।

सरलार्थः—यस्याश्चपलाया आद्य दलं चपलागतं लक्ष्म भजेत, अन्यो भागश्च सामान्यार्यायाः लक्षणलक्षितो भवेत् तदा सा **मुखचपला** नामतः प्रसिद्धा भवति ।

उदाहरणम्—

विपुलाऽभिजात वंशोद्—
भवापि रूपातिरेकरम्यापि ।
निःसार्यते गृहाद् वल्ल—
भापि यदि भवति मुखचपला ।।

(५) जघनचपलालक्षणम्—

प्राक् प्रतिपादितमर्द्धं,
प्रथमे तरे तु चपलायाः ।
लक्ष्माश्रयेत सोक्ता,
विशुद्धधीभि - र्जघनचपला ।।

सरलार्थः—या आर्या प्रथमेऽर्द्धे—पूर्वार्द्धे इत्यर्थः, प्राक्पूर्वं प्रतिपादितं-कथितं अर्थात् आर्या सामान्यम्, पथ्याया विपुलायाश्चेति यावत् लक्ष्य-लक्षणमाश्रयेत। प्रथमेतरे - द्वितीये अर्थादुत्तरार्द्धे, चपलायाः लक्षणं भजते सा आर्या। विशुद्धविद्वद्भिः आचार्यवर्यैः **जघनचपला** उक्ता। समन्वयः स्वयं कार्यः।

उदाहरणम्—

बुद्धो योगी विदितो,
यौवनमदलवविहीनकरुणाब्धिः।
आसीन्नवाङ्गनानां,
सुदुर्लभो जघनचपलानाम्॥

(६) **गीतिलक्षणम्**—

"आर्या प्रथमार्द्धसमं यस्या अपरार्द्धमाह तां गीतिम्॥"

सरलार्थः—यस्याः प्रथमार्द्धसमान एव उत्तरार्द्धभागोऽपि स्यात् तां कवयो **गीतिं** कथयन्ति। अर्थात् यत्र प्रथमे तृतीये च पादे द्वादश २ मात्राः द्वितीये चतुर्थे च अष्टादश २ मात्रा भवन्ति सा गीति छन्दो भवति।

उदाहरणम्–

कठिनं गुरुकुलगमनं ,
वेदाऽध्ययनं जितेन्द्रियत्वञ्च ।
प्रथमे वयसि नितान्तं ,
निषेव्यते यैस्त एव सत्पुरुषाः ।।

(७) उपगीतिलक्षणम्–

"आर्यापरार्धतुल्ये, दलद्वये प्रादुरुपगीतिम् ।"

सरलार्थः–यत्र आर्यायाः परार्धतुल्य एव पूर्वार्धो भवति अर्थात् प्रथमे तृतीये च पादे द्वादश २ मात्राः द्वितीये चतुर्थे च पादे पञ्चदश २ मात्राः भवन्ति सा उपगीतिः कथ्यते ।

उदाहरणम्–

उपगीति कुरङ्गशिशो यागाः
श्रुतिसुखलवस्पृहया ।
व्याधं किमपि न पश्यसि,
चापन्यस्तेषुमिह पुरतः ।।

अथवा–

गर्जन् भो मठनायक साधूनत्रासपद् विजयी ।
स मुनि हरिः खलु सम्प्रति यति लोकालस्यतो मौनी ।।

(८) उद्गीतिलक्षणम्–

आर्या सकलद्वितयं, व्यत्ययरचितं भवेद्यस्याम् ।
सोद्गीतिः किल कथिता–तद्वद्यत्यंशभेदसंयुक्ता ॥

सरलार्थः–आर्या सकलद्वितयं अर्थात् प्रथमभागो द्वितीयभागश्च यदि व्यत्ययरचितो भवति=पूर्वार्द्धस्थाने परार्द्धभागः, परार्द्धस्थाने पूर्वार्द्ध भागः इति यावत् । प्रथमपादे द्वितीयपादे क्रमशः द्वादशमात्राः पञ्चदशमात्राः, एवं तृतीय-चतुर्थयोः पादयोः क्रमशो द्वादशमात्राः अष्टादश-मात्राः भवन्ति तदा तस्य नामोद्गीतिरिति जायते ।

उदाहरणम्–

वीर वरेण्य रणमुखे, श्रुत्वा तव सिंहनादमिह ।
सपदि भवन्त्यरिकरिणो, मधुव्रतोद्गीतिरिक्तगण्डतटाः ॥

अथवा–

संस्कृतवाचोपदिशन्, सुकृती धर्मप्रचारमनाः ।
जह्नु तनुभवारोधसि, मन्त्रोद्गीतिश्चारुमुक्तात्मा ॥

(९) आर्यागीतिलक्षणम्–

आर्या पूर्वार्द्धं यदि, गुरुणैकेनाधिकेन निधने युक्तम् ।
इतरत् तद्वन्निखिलं, दलं यदीयमुदितैवमार्यागीतिः ॥

सरलार्थः—यदि आर्या - पूर्वार्द्धं निधने (अन्ते) एकेन अधिकेन गुरुणा युक्तं स्यात् किञ्च यदीयं इतरद् दलं निखिलं तद् वद् स्यात् अर्थाद् पूर्ववत् स्यात् सा आर्यागीतिरुच्यते। प्रथमे पादे द्वादशमात्राः द्वितीये च पादे विंशतिर्मात्रास्तथैव। तृतीय-चतुर्थयोरपि मात्रा यत्र सा आर्या गीतिरिति यावत्।

उदाहरणम्—

अजमजरममरमेकं, प्रत्यक् चैतन्यमीश्वरं ब्रह्मपरम्।
आत्मानं भावयतो, भवमुक्तिः स्यादितीयमार्यागीतिः॥

अथवा—

अजमजरममरमीशं,
स्वान्ते संध्यायतां हि पुण्यात्मनृणाम्।
मुक्तिस्तापत्रयतो जनुषां,
सा स्यादितीयमार्यागीतिः॥

अथ मात्रिकानुष्टुप् प्रकरणम्

(१०) वक्त्रछन्दोलक्षणम्—

"वक्त्रं नाद्यान्नसौ स्यातामब्धेर्योऽनुष्टुभि ख्यातम्।"

अन्वयः—यत्र अनुष्टुभि आद्यात् न सौ न स्याताम्, अब्धेः यः (स्यात्) तद् वक्त्रं ख्यातं भवतीति शेषः ।

सरलार्थः—यस्मिन् अनुष्टुभि छन्दसि=अष्टाक्षरके वर्णसमवृत्ते प्रथमवर्णतः पश्चात् नगणः सगणो वा नैव भवति तथा चतुर्थवर्णतः पश्चात् यगणो वर्त्तते तादृशं छन्दो वक्त्रनामकमनुष्टुब् भवति ।

उदाहरणम्—

नवधाराम्बु-संसिक्त—वसुधागन्धि निःस्वासम् ।
किञ्चिदुन्नत घोणाग्रं महीं कामयते वक्त्रम् ॥

यद्यपीदं वार्णिकाऽनुष्टुब् इव प्रतिभाति तथाऽपि मध्ये २ गुरुलघु वर्णस्य नियमो दृश्यतेऽतो मात्रिकच्छन्दः प्रकरणे धृतमिति बोध्यम् ॥

(११) **पथ्यावक्त्रलक्षणम्**—

"युजोर्जेन सरिद्भर्तुः पथ्यावक्त्रं प्रकीर्त्तितम् ।"

सरलार्थः—युजोः समयोश्चरणयोः सरिद्भर्तुः समुद्राच्चतुरक्षरात् ऊर्ध्वमिति शेषः । जेन=जगणेन (यदि संयुक्तं स्यात्) तर्हि तत् **पथ्यावक्त्रं** प्रकीर्तितं भवति ।

उदाहरणम्--

नित्यं नीतिनिषण्ण-
स्य राज्ञो राष्ट्रं न सीदति ।
नहि पथ्याशिनः काये ,
जायन्ते व्याधिवेदना ।।

अत्र समयोर्द्वितीय-चतुर्थयोश्चरणयोश्चतुर्थात् परं जगणो वर्त्तते ।

(१२) चपलावक्त्रस्य लक्षणम्--

"चपलावक्त्रमयुजोर्नकारश्चेत्पयोराशेः ।"

सरलार्थः--चेत् यदि अयुजोः विषमचरणयोः पयोराशेरर्थात् चतुर्थात् अक्षरात् नकारः नगणः स्यात् तदा तच्छन्दः चपलावक्त्रं भवतीति ज्ञेयम् । अत्र अयुजोरित्युक्ते समयोऽस्तु यगण एवेति लभ्यं भवति ।

उदाहरणम्--

क्षीयमाणाग्रदशना ,
वक्त्रा निर्मांस - नासाग्रा ।
कन्यका वस्त्र - चपला ,
लभते धूर्त्त सौभाग्यम् ।।

(१३) **अचलधृतिलक्षणम्–**

"द्विकगुणितवसुलघुरचलधृतिरिति ।"

द्वि-क-गु-णि-त-व-सु-ल-घु-र-च-ल-धृ-ति-रि-ति ।

सरलार्थः–द्विकगुणिता वसवो यत्र ते द्विकगुणित वसवः षोडशेत्यर्थः । षोडशलघवो मात्रा यस्मिन् छन्दसि सा **अचलधृति** नाम्ना प्रसिद्धयति । प्रत्येकं पादः षोडशमात्रा परिमित एवात्र जायते । पिङ्गलमुनिरेनां गीत्यार्येति नाम्ना व्यपदिशति ।

उदाहरणम्–

मदकलखगकुलकलरवमुखरिणि ,
विकसितसरसिजपरिमलसुरभिणि ।
गिरिवरपरिसरसरहिम हृति खलु ,
रतिरतिशयमिह मम हृदि विलसति ।।

अत्र प्रतिपादं षोडशमात्राः लघुरूपाः सन्ति ।।

(१४) **विश्लोकलक्षणम्–**

"जोन्लावथाऽम्बुधेर्विश्लोकः ।"

सरलार्थः–अम्बुधेश्चतुर्थ्या मात्रायाः पश्चात् यदि

जगणः स्यात्। शेषम् अर्थात् नवमी मात्रा लघुस्तत् पश्चात् गुरुश्चेत् षोडशमात्रिकमिदं छन्दः **विश्लोक** इति नाम्ना प्रसिद्धं भवति।

उदाहरणम्–

आतर्गुणरहितं विश्लोकं –
दुर्णयकरणकदर्थितलोकम्।
जातं महितकुलेऽप्यविनीतं,
मित्रं परिहर साधु विगीतम्॥

(१५) चित्रालक्षणम्–

"बाणाष्टनवसु यदि लश्चित्रा।"

सरलार्थः–यत्र पञ्चमाष्टमनवभ्यो मात्रा लघुरूपाः अन्यत् सर्वं पूर्ववत् षोडशमात्रायाः पादो। यत्र सा चित्रा भवति।

उदाहरणम्–

यदि वाञ्छसि परपदमारोढुं,
मैत्रीं परिहर सह वनिताभिः।
मुह्यति मुनिरपि विषयासङ्गात्,
चित्रा भवति हि मनसो वृत्तिः॥

अस्मिन् पद्ये प्रतिचरणं पञ्चमाष्टमनवभ्यो मात्राः लघुरूपाः ।

(१६) पादाकुलकलक्षणम्–

यदतीतकृतविविध-लक्ष्मयुतैः ,
मात्रा समासादिपादैः कलितम् ।
अनियतवृत्त - परिमाणयुक्तं ,
प्रथितं जगत्सु पादाकुलकम् ।।

सरलार्थः–मात्रा समकालादीनां येषां छन्दसां लक्षणमुक्तमिह तेषां मात्रा समादितछन्दसां चरणैर्यस्य छन्दसो रचना विधीयते । अर्थात्–यस्य चत्वारोऽपि पादाः एकलक्षणेन युक्ता न भवन्ति (अर्थात्–विभिन्न-प्रकारकाः भवन्ति) तथा षोडशमात्रिका एव भवन्ति तच्छन्दो पादाकुलकमिति नाम्ना प्रसिद्धं भवति ।

उदाहरणम्–

पुंस्कोकिल-कृतशोभन-गीते ,
दक्षिण - पवनप्रेरितशीते ।
मधुसमयेऽस्मिन् कृतविश्लोकः ,
पादाकुलकं नृत्यति लोकः ।।

(१७) दोहडिकालक्षणम्–

मात्रा द्वयोर्दशकं यदि, पूर्वं लघुकविरामी ।
पश्चादेका दशकं तु, दोहडिका द्विगुणेन ॥

सरलार्थः–यत्र प्रथमं चरणं त्रयोदशमात्रामयं, लघुक विरामि–अर्थात् विरामे लघुवर्णयुक्तं, द्वितीयचरणे च एकादशमात्रा विरामे च लघुवर्णः स्यात्, यदि तदा दोहडिका नाम वृत्तं स्यात् । द्विरावृत्या पूर्यते छन्दः । अर्थात् तृतीय-चतुर्थ चरणावपि प्रथम-द्वितीय सदृशावेव भवतोऽस्य छन्दसः ।

उदाहरणम्–

सत्सङ्गतिरिह सर्वदा, फलमधिकं वितनोति ।
कीटः कुसुमप्रसङ्गतः, देवाऽमृतमाप्नोति ॥

अथ मात्रिकार्धसमवृत्तम्

(१८) वैतालीयलक्षणम्–

षड् विषमेऽष्टौ समे कला-
स्ताश्च समे स्युर्नो निरन्तराः ।
न समात्र पराश्रिताः कलाः,
वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरुः ॥

अन्वयः–वैतालीये विषमे (पादे) षट्कलाः स्युः समे पादे अष्टौ कलाः स्युः अन्ते रलौ गुरू स्तः । समे च ताः (कलाः) निरन्तरा न स्युः । अत्र समाः कलाः पराश्रिता न भवन्ति ।

सरलार्थः–यस्य विषयेऽर्थात् प्रथमे तृतीये च पादे षट्मात्राः, तथा द्वितीये चतुर्थे च चरणे अष्टौ मात्रा भवेयुः एवं तासां मात्राणां पश्चात् उभयत्र अर्थात् समे विषमे च एको रगणः एको लघुरेको गुरुश्च क्रमेण वर्त्तेत तदा तच्छन्दो वैतालीयनामकं प्रसिद्धयति । इदमर्धसमं छन्दः ।

उदाहरणम्--

जगदेकहितैक-निश्चया-
निजधर्मैक - परप्रयोजनाः ।
जगतीतलमात्रमण्डले-
विरला एव भवन्ति ते जनाः ॥

अथवा--

क्षुत्क्षीणशरीरसञ्चया-
व्यक्तीभूत शिराऽस्थिपञ्जराः ।
केशैः परुषैस्तवारयो ,
वैतालीय - तनुं वितन्वते ॥

(१९) औपच्छन्दसिकलक्षणम्–

पर्यन्ते यौ तथैवशेषं त्वौपच्छन्दसिकं सुधीभिरुक्तम् ।

सरलार्थः–यस्य वैतालीयस्य पर्यन्ते विषमसमचरणयोः षण्णामष्टानाञ्च कलानामन्तेयौ अर्थात् रगण-यगणौ स्यातां शेषं षडष्टकलादि नियमादि तथैव अर्थात् वैतालीयवदेव स्यात् तदा सुधीभिरौपच्छन्दसिकं नाम छन्दः कथ्यते ।

उदाहरणम्–

वाक्यैर्मधुरैः प्रतार्य पूर्वं यः
पश्चादभिसन्दधाति मित्रम् ।
तं दुष्टमतिं विशिष्टगोष्ठ्या–
मौपच्छन्दसिकं वदन्ति बाह्यम् ।।

अथवा–

परवञ्चनकर्मणि प्रवीणं
यतिवृन्दं गृहमेधितोऽपि दुष्टम् ।
निजधर्मपराङ्मुखं तदानी–
मौपच्छन्दसिकं ददर्श देवः ।।

(२०) आपातलिकालक्षणम्–

"आपातलिका कथितेयं, भाद् गुरुकाऽथ पूर्वमन्यम् ।"

सरलार्थः—यत्र पर्यन्ते षण्णामष्टानाञ्च मात्राणामन्ते भाद् भगणाद् आदिगुरोः गुरुकौ द्वौ गुरू स्याताम् एवमन्यत् पूर्वकथित वैतालीयवद् भवति तस्य नाम आपातलिका भवति ।

उदाहरणम्—

पिङ्गकेशी कपिलाक्षी, वाचाटाविकहोन्नतदन्तो ।
आपातलिका पुनरेषा, नृपति कुलेऽपि न भाग्यमुपैति ।।

अथवा—

गुरुकुलसेवी गुणरागी, गुरुभक्तो नियमोचितवृत्तः ।
सकलहितैषी मितवादी, यदि लोकः किमलभ्यमिह स्यात् ।।

(२१) **दक्षिणान्तिकालक्षणम्—**

तृतीय युग् दक्षिणान्तिका समस्तपादेषु द्वितीय लः ।

सरलार्थः—समस्तपादेषु समस्तेषु चतुर्ष्वपि चरणेषु द्वितीय लः—द्वितीया मात्रा, ल शब्दस्येह मात्राऽर्थः, तृतीय युग् तृतीयया मात्रया युग् युक्ता चेत् स्यात् तदा **दक्षिणान्तिका** नाम छन्दो भवति । चेत् तदा शब्दावद्याहार्यौ । सर्वेषु चरणेषु द्वितीयो वर्णो गुरुरेवविधेयः । तत एव द्वितीया मात्रा तृतीयया युक्ता भविष्यति । अतः न समाऽत्र पराश्रिता कला इति वैतालीय सामान्यलक्षणोक्तस्यायमपवादः ।

शेषं यथा प्राप्तमेव । यथाऽत्रैव लक्षणवाक्ये द्वितीया मात्रा तृतीयया मिश्रिता ।

उदाहरणम्–

यदीय पादाब्जचिन्तया, पलायनं पापानि कुर्वते ।
सदैव भाण्डासुरकान्तकं, तमादिदेवं मानसे दधे ।।

।। इतिश्री शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्त्ति-तपोगच्छाधिपति - भारतीयभव्यविभूति-अखण्डब्रह्मतेजोमूर्ति-चिरंतन-युगप्रधानकल्प - सर्वतन्त्रस्वतन्त्र - श्रीकदम्बगिरिप्रमुखानेक-प्राचीनतीर्थोद्धारक-पञ्चप्रस्थानमयसूरिमन्त्रसमाराधक - परम पूज्याचार्यमहाराजाधिराज - **श्रीमद्‌विजयनेमिसूरीश्वराणां**-पट्टालंकार - साहित्यसम्राट् - व्याकरणवाचस्पति - शास्त्र-विशारद - कविरत्न - साधिकसप्तलक्षश्लोकप्रमाण - नूतन-संस्कृतसाहित्यसर्जक - परमशासनप्रभावक - निरुपमव्याख्या-नामृतवर्षि बालब्रह्मचारि - परमपूज्याचार्यप्रवर **श्रीमद्‌-विजयलावण्यसूरीश्वराणां** पट्टधर-धर्मप्रभावक-व्याकरणरत्न-शास्त्रविशारद-कविदिवाकर-देशनादक्ष-बालब्रह्मचारि-परम-पूज्याचार्यदेव-**श्रीमद्‌विजयदक्षसूरीश्वराणां** - पट्टधर-जैनधर्म-दिवाकर-शासनरत्न-तीर्थप्रभावक- राजस्थानदीपक - मरुधर-देशोद्धारक-शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न-कविभूषणेति-पदसम - लङ्कृतेन **श्रीमद्‌विजयसुशीलसूरिणा** विरचितायां **छन्दोरत्न-मालायां** मात्रिकछन्दनिरूपणात्मको द्वितीयः स्तबकः

।। समाप्तः ।।

तृतीयः स्तबकः

अथानेकप्रकाराणां मात्रिकछन्दसां रचनाविधिं प्रदर्श्य सम्प्रति वर्णवृत्तानां छन्दसां निरूपणं प्रारभते ।

सर्वप्रथमं उक्ताजातिभेदेषु श्रीनामकं छन्दः । एकाक्षरमेतत्–

(१) **उक्तायां "गः श्रीः"** । लक्षणमिदम् । अथवा **"गुः श्रीरिति कथ्यते** ।

सरलार्थः--एको गुरुवर्णमात्रं यस्य प्रतिपादं भवति तत् श्रीनामकं छन्दो भवति । उदाहरणेषु सर्वत्र यथा कथञ्चिच्छन्दो नाम्नः समावेशनं कर्त्तव्यमिति प्रथा कविजनानां विद्यते ।

उदाहरणम्–

श्री शः पायात् ।। अथवा–गीर्धीः श्रीः स्तात् ।। छ. ।।

अस्मिन् प्रतिचरणम् एकैको गुरुवर्णो विद्यते इति लक्षणं सङ्गतं भवति ।

(२) **अत्युक्तायां "गौ स्त्रीः"।** लक्षणमिदम्।

सरलार्थः—यस्मिन् छन्दसि प्रतिपादं द्वौ द्वौ गुरुवर्णौ भवतः तत् स्त्री नामकं छन्दः कथ्यते।

उदाहरणम्—

श्रीमान् वीरः। नित्यं, ध्येयः॥ छ. स्वकृतम्। अथवा—भ्रात, दृष्टा। इष्टा, सा स्त्री॥ छ.। अस्यापरं नाम पद्ममित्यपि॥

(३) **लौ मदः।** लक्षणमिदम्।

सरलार्थः—यत्र प्रतिपादं द्वौ द्वौ लघुवर्णौ भवतस्तं मदनामकं छन्दो भवति।

उदाहरणम्—

जय, जिन। जित मद॥ छ.
अस्यापरं नाम पुण्यमप्यस्ति॥

(४) **मध्या जातिच्छन्दः।** मध्यायां मो नारी। लक्षणमिदम्।

सरलार्थः—यस्य प्रतिपादं एकैको मगणो (ऽऽऽ) भवति=अर्थात् त्रिगुरुवर्णपादात्मकं छन्दः नारी नामकं भवति।

उदाहरणम्–

निःसारे, संसारे । सारं किं, स्यान्नारी ॥ छ. ॥

अथवा–

नारीणां कल्याणी । मां पायात् सा वाणी ॥ छ. ॥

मध्यायाः जातेस्तृतीयो भेदः–

(५) **रो मृगी ।** लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः–यस्य प्रतिचरणमेकैको रगणो (ऽ।ऽ) भवति तत् मृगी नामकं छन्दः कथ्यते । अस्यापरं नाम तडिदिति ।

उदाहरणम्–

वल्लभा गेहिनी । सा मृगी-लोचना ॥ छ. ॥

(६) **सो मदनः ।** लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः–यस्य प्रतिपादमेकैकः सगणो (।।ऽ) भवति तन्मदननामकं छन्दः कथ्यते । अस्यापरं नाम रजनीत्यपि ।

उदाहरणम्–

विरहेऽभ्यधिकम् । मदनो दहति ॥

(७) **अथ प्रतिष्ठा जातिभेदः** प्रदर्श्यते । अस्याश्चत्वारो भेदाः प्रस्तारक्रियया षोडश भेदाः भवन्ति । **चतुरक्षरकं छन्दः । म्गौ चेत् कन्या ।** लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः—यस्य प्रतिपादं मगणश्चैको गुरुवर्णश्चैको भवति तत् कन्यानामकं छन्दो ज्ञेयम् ।

उदाहरणम्—

सर्वैर्देवैः येहाञ्चक्रे । सेयं मन्ये धन्या कन्या ।। छ. ।।

(८) **स्गौ सुमतिः ।** लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः—यत्रैकस्मिन् पादे सगणोत्तरमेको गुरुवर्णो भवति तत् सुमतिनामकं छन्दः कथ्यते ।

उदाहरणम्—

भज धर्मं, वद सत्यम् । त्यज पापं, सुमतिः सन् ।।

(९) **अथ सुप्रतिष्ठा जातिर्दर्श्यते ।** अत्र प्रस्तारक्रियाभेदैर्द्वात्रिंशद्भेदा जायन्ते । तेषां सप्तमो भेदः—**भ्गौ गिति पङ्क्तिः ।** लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः—यस्यैकस्मिन् चरणे एको भगणः (ऽ।।)

तदुत्तरं द्वौ गुरुवर्णौं स्तः तत् पङ्क्तिनामकं छन्दः कथ्यते। अत्र प्रतिपादं पञ्च वर्णा भवन्ति। पञ्चाक्षरपादकमेतत्।

उदाहरणम्–

फाल्गुन - मासे, फुल्लवनान्ते।
पावक - तुल्या, किंशुक - पङ्क्तिः ॥ छ.

(१०) **रो गौ प्रीतिः।** लक्षणमिदम्।

सरलार्थः–यस्मिन् रगणो (ऽ।ऽ)त्तरं द्वौ गुरू स्तः तत् प्रीतिनामकं छन्दः कथ्यते।

अत्र गायत्रीछन्दसः क्रमेण ६४ भेदा जायन्ते। तेषु त्रयोदशभेदः प्रदर्श्यंते। षडक्षरपादकं छन्द इदम्।

(११) **त्यौस्तस्तनुमध्या।** लक्षणमिदम्। (षडक्षरपादकमेतत्।)

सरलार्थः–यस्य प्रतिपादं क्रमशस्तगणो (ऽऽ।) यगण (।ऽऽ) श्च भवति तत् तनुमध्यानामकं छन्दः कथ्यते।

उदाहरणम्–

लावण्यपयोधिः, सौभाग्यनिधानम्।
सा कस्य न हृद्या, बाला तनुमध्या ॥ छ. ॥

अथवा–

मूर्त्तिर्मुरशत्रो - रत्यद्भुत - रूपा ।
आस्तां मम चित्ते, नित्यं तनुमध्या ।।

(१२) गायत्र्या एव षोडशं भेदमाह । **शशिवदना न्यौ ।** लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः–यस्य प्रतिचरणं क्रमशो नगण (।।।) यगण (।ऽऽ) संयुक्तं भवति तत् शशिवदनानामकं छन्दः कथ्यते ।

उदाहरणम्–

मनसिजलीला - कुलगृहभूमिः ।
कुवलयनेत्रा - शशिवदनेयम् ।। छ. ।।

अथवा–

शशिवदनानां, व्रजतरुणीनाम् ।
दधिघटभेदं, मधुरिपुरैच्छत् ।।

(१३) गायत्र्या एव प्रथमो भेदः । **"विद्युल्लेखा मो मः"** । लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः–यस्य प्रतिचरणं मगण द्वयवद् भवति सा विद्युल्लेखा ।

उदाहरणम्–

वर्षाकाले काले, मेघाच्छन्नाकाशे ।
विद्युल्लेखा भान्त्यः, सर्वैरालोक्यते ॥

(१४) गायत्र्या एव एकोनविंशं भेदं दर्शयति– **"त्सौ चेद् वसुमती"** । लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः–यस्मिन् प्रतिपादं तगण (ऽऽ।)–सगणौ (।।ऽ) स्यातां तदा वसुमतीनामकं छन्दो जायते तत् ।

उदाहरणम्–

सा स्ते वसुमती, यास्ते वसुमती ।
पुण्याकरवती, पुण्याकरभवा ॥

(टिप्पणी–गायत्री जातिपर्यन्त छन्दसां पादान्ते यतिः सर्वत्र भवतीति सामान्यो नियमः ।)

(१५) **"स्यौ विमला"** । लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः–यस्य प्रतिचरणं सगण–(।।ऽ)–यगणौ (।ऽऽ) स्तः तत् सुनन्दानामकं छन्दो भवति ।

उदाहरणम्–

निपतन्ति यस्मिन्, सरलादृशस्ते ।
तमुपैति लक्ष्मीः, विमला च कीर्त्तिः ॥

(१६) **"म्यौ सुनन्दा"** । लक्षणपदमेतत् ।

सरलार्थः–यस्य प्रतिपादं मगण (SSS)–यगणौ (ISS) स्तः तत् सुनन्दानामकं छन्दो भवति ।

उदाहरणम्–

श्रीमत् पार्श्वनाथ !, त्वत् पादाब्जयुग्मे ।
भूयान्निर्विकल्पा, भक्तिर्मे सुनन्दा ।।

अथ सप्ताक्षरकं छन्दः–

अत्र उष्णिग् जातिभेदाः प्रदर्श्यंते । सप्ताक्षरमेतद् भवति प्रस्तारक्रमेणोष्णिहो १२८ भेदा जायन्ते ।

(१७) **"म्सौ गः स्यान्मदलेखा"** । लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः–यत्र क्रमशः प्रतिपादं मगण (SSS)–सगणौ (IIS)एकश्च गुरुवर्णो (S) भवति सा मदलेखा कथ्यते ।

उदाहरणम्–

यावद् केसरिनादो, नायाति श्रुतिमार्गम् ।
तावद् गन्धगजानां, गण्डे स्यान् मदलेखा ।। छ. ।।

(१८) **"कुमारललिता ज्सौग्"** । लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिचरणं क्रमशो जगण (।ऽ।)-सगणौ [।।ऽ]-स्तरमेको गुरुवर्णः=[ऽ] तिष्ठति तल्ललिता-नामकं छन्दो भवति ।

उदाहरणम्—

नरेन्द्रगणसेना-वृतः पथिकशक्तिः ।
दधासि नृपते त्वं, कुमारललितानि ।। छ. ।।

(१९) "**सरगैर्हंसमाला**" । लक्षणपदमिति ।

सरलार्थः—यस्मिन् प्रतिपादं सगणो [।।ऽ] रगणो [।।ऽ] गुरु [ऽ] रेकश्च तिष्ठति सा हंसमाला कथ्यते ।

उदाहरणम्—

शैवलानि निराशा, पङ्कजे बद्धवासा ।
किं वकोटावलीयं, हन्त सा हंसमाला ।। छ. ।।

(२०) "**त्सौ गो भ्रमरमाला**" । लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिचरणं क्रमशः तगणः (ऽऽ।) सगण (।।ऽ)-स्तत एको गुरुवर्णो (ऽ) भवेत् तद् भ्रमर-मालानामकं छन्दः कथ्यते ।

उदाहरणम्—

कुन्दे विकसिते वा, मन्दारकुसुमे वा ।
प्रीत्या मधुरसाढ्ये, भ्रान्ता भ्रमरमाला ।। छ. ।।

अनुष्टुप् छन्दः

अथानुष्टुप् प्रकरणम्–प्रस्तारक्रमेणानुष्टुभो भेदाः २५६ भवन्ति। **अष्टवर्णपादात्मकमिदं छन्दः।**

(२१) **"भौ गीति चित्रपदा"**। लक्षणमिदम्।

सरलार्थः–भ. भ. गु. गु.=यत्र प्रतिपादं भगणद्वयं द्वौ गुरूवर्णौ च भवतस्तच्चित्रपदानामकमनुष्टुप् छन्दो भवति। पञ्च पञ्चाशत्तमोऽयं भेदः।

उदाहरणम्–

व्योमनि सागरतीरे, पर्वतशृङ्गनिकुञ्जे।
भ्राम्यति भीमकुलेन्दो, चित्रपदा तव कीर्त्तिः ॥ छ. ॥

अथवा–

यस्य मुखे प्रियवाणी, चेतसि सज्जनता च।
चित्रपदाऽपि च लक्ष्मीः तं पुरुषं न जहाति ॥

(२२) **"मो मो गो गो विद्युन्माला"**। लक्षणमिदम्।

सरलार्थः–म. म. गु. गु.=अर्थात् यत्र प्रतिपादं क्रमशः मगणद्वयं गुरुवर्णद्वयञ्च भवति सा विद्युन्माला कथ्यते। चतुर्षु चतुर्षु यतिस्तत्र जायते।

उदाहरणम्–

सत्यं रम्याः भोगाः भोगाः, कान्ताः कान्ताः प्राज्यं राज्यम् ।
किं कुर्वन्तु प्राज्ञा यस्माद्, आयुर्विद्युन्माला लोलम् ॥ छ. ॥

अत्र श्रुतबोधः–

सर्वे वर्णा दीर्घा यस्यां, विश्रामः स्याद् वेदैर्वेदैः ।
विद्वद्वृन्दैर्वीणावाणि - व्याख्याता सा विद्युन्माला ॥

उदाहरणम्–

विद्युन्माला लोलान् भोगान्, मुक्त्वा युक्तौ यत्नं कुर्यात् ।
ध्यानोत्पन्नं निःसामान्यं, सौख्यं भोक्तुं यद्याकाङ्क्षेत् ॥

(२३) **"त्रौ लगौ नाराचम्"** । लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः–यत्र क्रमशः प्रतिचरणं तगण-रगणौ लघु गुरु च स्तः तन्नाराचनामकं छन्दः कथ्यते ।

उदाहरणम्–

दुर्वारवैरिदन्तिनां, कुम्भस्थलेषु निश्चलः ।
त्वत् कीर्त्तिकेतुवंशवत् - नाराच एष शोभते ॥

(२४) **"माणवकं भात्तलगाः"** । लक्षणमेतत् ।
अनुष्टुभः शततमोऽयं भेदः ।

सरलार्थः—यस्मिन् क्रमशः भगणोत्तरं तगणास्तदुत्तरं लघुर्गुरुश्च स्थाप्यते तच्छन्दो माणवकं भवति । (ऽ।।. ऽ।।. ।ऽ.) । चतुर्षु चतुर्षु यतिरत्र जायते ।

उदाहरणम्—

शीतकजान्योऽन्यरणात्, दन्तरवैर्विकस्वरम् ।
साम पठन् माणवकोऽश्नासि मुहुर्यत्र शुकैः ।। छ. ।।

अत्र श्रुतबोधः—

आदिगतं तुर्यगतं, पञ्चमकं चाऽन्त्यगतम् ।
स्याद् गुरु चेत् तत् कथितं, माणवकाक्रीडमिदम् ।।

उदाहरणम्—

माणवकक्रीडितकं, यः कुरुते वृद्धवयाः ।
हास्यमसौ याति जने, भिक्षुरिव स्त्रीचपलः ।।
(वृत्तरत्नाकरः)

(२५) अनुष्टुभः सप्तपञ्चाशत्तमो भेदः—**"म्नौ गौ हंसकतमेतत्"** । (ऽऽऽ. ।।।. ऽऽ.) । लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिचरणं क्रमशः मगणनगणोत्तरं गुरुवर्णद्वयं भवेत् तद् हंसकतनामकं छन्दः कथ्यते ।

उदाहरणम्–

अभ्यागामिशशिलक्ष्मी - मञ्जीरक्वणिततुल्यम् ।
तीरे राजति नदीनां, रम्यं हंसकतमेतत् ।।वृ.।।

अथवा–

मञ्जीरक्वणितयोग्यां, कुर्वाणं श्रवणभोग्याम् ।
आदत्ते वत मनांसि, यूनां हंसकतमेतत् ।। छ. ।।

(२६) अनुष्टुभः १७१ तमोऽयं भेदः समानिका । **"जौ समानिका गलौ च"** । ऽ।ऽ. ।ऽ।. ऽ।. । लक्षण-पदमिदम् ।

सरलार्थः–यस्य प्रतिपादं क्रमशः रगणः जगण-स्तदुत्तरं गुरुर्लघुश्च भवति सा सामानिका कथ्यते ।

उदाहरणम्–

रागरोषमोहदोष - दारुदावपावकस्य ।
तीर्थिकैः समं जिनस्य, नो समानिकाकलापि ।। छ. ।।

अथवा–

ॐ नमो जनार्दनाय, पापसंघमोचनाय ।
दुष्टदैत्यमर्दनाय, पुण्डरीकत्वो च नाय ।।

अनुष्टुभः ८६ तमुशीतितमो भेदः ।

(२७) **"प्रमाणिका जरौ लगौ"**। लक्षणमिदम्। ज. र. ल. ग. [।ऽ।. ऽ।ऽ. ।. ऽ.] ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिचरणं क्रमशः जगणो रगणस्तदुत्तरं लघुर्गुरुश्च वर्णो भवति सा प्रमाणिका कथ्यते।

उदाहरणम्—

तव प्रभातुमिच्छतां, यशश्चुलुक्य भूपते।
समग्रमानजित्त्वरी, जगत्त्रयी प्रमाण्यभूत् ॥ छ. ॥

अथवा—

पुनातु भक्तिरच्युता, सदाऽच्युताङ्घ्रिपद्मयोः।
श्रुतिस्मृतिप्रमाणिका, भवाम्बुराशितारिका ॥

टिप्पणी—अस्याः श्रुतनगस्वरूपिणी नाम निर्दिष्टमस्ति। यथा—

द्वितुर्यषष्ठमष्टमं, गुरुप्रयोजितं यदा।
तदा निवेदयन्ति तां, बुधा नगस्वरूपिणीम् ॥

उदाहरणम्—

नमामि भक्तवत्सलं, कृपालुशीलकोमलम्।
भजामि ते पदाम्बुजं, अकामिनां स्वधामदम् ॥

(२८) "**रजौ गौ सिंहलेखा**" । लक्षणमेतत् । SIS. ISI. SS. ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिपादं क्रमशः रगणो जगणस्तदुत्तरं गुरुवर्णद्वयं तिष्ठति सा सिंहलेखा भवति ।

उदाहरणम्—

पर्णपात्रमात्रभीत ! कृष्णसारपोत तात ।
किं विलम्बसे महात्मन्, त्वं जहीहि सिंहलेखाम् ॥छ.॥

(२९) "**वितानमाभ्यां यदन्यत्**" । लक्षणमेतद् वितानछन्दसः ।

सरलार्थः—समानिका-प्रमाणिकाभ्यां भिन्नं वितानसंज्ञकं छन्दो भवति । अन्यपदेनात्र अलक्षित छन्दोऽतिरिक्तमनुष्टुब्जातीयमनेकविधमूह्यम् ।

उदाहरणम्—

त्वयि तेजोभिरशेषं, जगदुद्योतयतीदम् ।
उदयत्येष इदानीं, सवितानाथो मुधैव ॥ छ. ॥

अथ वृहती भेदा द्वादशाधिकपञ्चशतम् [५१२] । **नवाक्षरपादिका** एव सर्वा वृहती भवतीति विज्ञेयम् ।

(३०) **"रान्नसाविह हलमुखी"** । र. न. स. । ऽ।ऽ. ।।।. ।ऽऽ. लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिचरणं क्रमशः रगण-नगण-सगणा भवन्ति सा हलमुखी कथ्यते ।

उदाहरणम्—

दन्तुरं कपिशनयनं, यन्मुखं विकटचिबुकम् ।
तां स्त्रियं सुखमभिलषन्, दूरतस्त्यजेद् हलमुखीम् ।छ.।

अथवा—

गण्डयोरतिशयकृशं, यन्मुखं यन्मुखप्रकटदशनम् ।
आपतं कलहनिरतं, तां स्त्रियं स्त्रियं त्यज हलमुखीम् ।।छ.।।

(३१) **"नो रौ वृहतिका"** । न. र. र. । लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः—यस्य प्रतिपादं क्रमशः नगण रगण रगणाः भवन्ति सा बृहतिका कथ्यते । ।।।. ऽ।ऽ. ऽ।ऽ. । लक्षणमेतद् ।

उदाहरणम्—

विशदवृत्तलब्धात्मानः, शुचियशोपतेर्भूपतेः ।
तव कमण्डलुवारिधिर्, बृहतिका मन्दाकिनी ।।छ.।।

(३२) बृहत्याः ६४ चतुष्षष्टितमो भेदः–
"भुजगशिशुभृता नौ मः" । न. न. म. । ।।।. ।।।. SSS. ।
लक्षरणमिदम् ।

सरलार्थः–यस्य प्रतिचरणं क्रमशः नगणद्वयं तदुत्तरं मगणो भवति तस्य भुजगशिशुभृतां नाम कथ्यते ।

उदाहरणम्–

नयनविलसितैरस्याः, कथमिव वत मूर्च्छा ते ।
भुजगशिशुभृता यद्वाऽवगतमुरगकन्येयम् ।।

अथवा–

हृदतटनिकटक्षोणी-भुजगशिशुभृता याऽसीत् ।
मुररिपुदलिते नागे, व्रजजनसुखदासाऽभूत् ।।

(३३) **"मः सौ कनकम्"** । म. स. स. । SSS. ।।S. ।।S. । लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं मगणोत्तरं सगणद्वयं भवति तत् कनकनामकं छन्दः कथ्यते ।

उदाहरणम्–

मिथ्यादर्शनदिग्धमनाः, पापं धर्मधिया मनुते ।
गाढोन्मत्त रसान्धदृशां, मृतपिण्डोऽप्यथ वा कनकम् ।।छ.।।

अथ पङ्क्तिजातिप्रदर्शनम् ।

प्रस्तारक्रमेणाऽस्य १०२४ भेदाः भवन्ति । अत्र सर्वाण्येव छन्दांसि **दशाक्षरचरणकानि** जायन्ते ।

(३४) "म्सौ ज्गौ शुद्धविराडिदं मतम्" । म. स. ज. गु. । SSS. IIS. ISI. S. । लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः—यस्य प्रत्येक चरणे क्रमशो मगणः सगणो जगणो गुरुरेकश्च तिष्ठति तस्य शुद्धविराडिति नाम प्रथितं भवति । अत्र पादान्ते यतिर्भवति ।

उदाहरणम्—

सम्यग्ज्ञानचारित्रपात्रतां ,
यो दध्रे भुवनैकबान्धवः ।
त्रैलोक्यस्पृहणीयतां गतः ,
सत्यं शुद्ध विराडयं मुनिः ।। छ. ।।

अथवा—

विश्वं तिष्ठति कुक्षिकोटरे ,
वक्रे यस्य सरस्वती सदा ।
अस्मद्वंश पितामहो गुरु-
र्ब्रह्मा शुद्धविराट् पुनातु नः ।।

(३५) **"म्नौ य्गौ चेति पणवनामेदम्"** । म. न. य. गु. । SSS. ।।।. ।SS. S. । लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः—यस्य प्रतिचरणं क्रमशः मगण नगण यगणो-त्तरं गुरुरेको भवति तत् पणवनामकं छन्दः कथ्यते ।

उदाहरणम्—

स्याद्वादाऽमृतमुदिते चित्ते ,
शास्त्रोक्तिः कटुरितरा भाति ।
एवं संसदि चतुरङ्गायां ,
जल्पामो जयपणवं मन्यते ।। छ. ।।

अथवा—

मीमांसारसममृतं पीत्वा ,
शास्त्रोक्तिः कटुरितरा भाति ।
एवं संसदि विदुषां मध्ये ,
जल्पामो जय पणवबन्धत्वात् ।।

(३६) **"भिगौ चित्रगतिः"** । भ. भ. भ. गु. । S।।. S।।. S।।. S. । लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः—यस्य प्रतिपादं भगणत्रयोत्तरमेको गुरुवर्णो भवति तत् चित्रगतिनामकं छन्दो जायते ।

उदाहरणम्–

यस्य न काऽपि कला न मति-
र्न व्यवसाय लवोऽपि तथा।
सोऽपि कथञ्चन जीवति चेद्,
दैवमिदं खलु चित्रगतिः॥

(३७) **"जौ रगौ मयूरसारिणी स्यात्"**। र. ज. र. गु.। ऽ।ऽ. ।ऽ।. ऽ।ऽ. ऽ.। लक्षणमेतत्।

सरलार्थः–यत्र प्रतिचरणं क्रमशः रगण जगण रगणोत्तरं गुरुरेकस्तिष्ठति तत् मयूरसारिणीनामकं छन्दः कथ्यते। पादान्ते यतिर्ज्ञेया।

उदाहरणम्–

या घनान्धकारडम्बरेषु,
प्रतिमानसा विसर्पतीह।
क्षोभयन्त्यपि क्षणाद् भुजङ्गान्,
संत्यजेन्मयूरसारिणां ताम्॥ छ.॥

(३८) **"भ्मौ सगयुक्तौ रुक्मवतीयम्"**। भ. म. स. गु.। ऽ।।. ऽऽऽ. ।।ऽ. ऽ.। लक्षणमिदम्।

सरलार्थः–यत्र प्रतिचरणं क्रमशः भगण मगण सगणोत्तरभेदो गुरुर्भवति सा रुक्मवती कथ्यते।

उदाहरणम्–

ये विजितात्मनो नयनिष्ठाः ,
जाग्रति लोकं रक्षितुकामः ।
स्यान् नियतं वसुधेयं रुक्म-
वती मृगमप्य परेषाम् ।। छ. ।।

अथवा–

पादतले पद्मोदरगौरे ,
राजति यस्या ऊर्ध्वगरेखा ।
सा भवति स्त्री लक्षणयुक्ता ,
रुक्मवती सौभाग्यवती च ।।

श्रुतबोधानुसारेण नाम चम्पकमाला विद्यते । यथा–

तन्वि गुरुस्यादाद्यचतुर्थं ,
पञ्चमषष्ठं चान्त्यमुपान्त्यम् ।

उपरितनमेव पद्यमुदाहरणं प्रदेयमत्र ।

(३९) पङ्क्तेः २४१ तमो भेदः प्रदर्श्यते । "ज्ञेया मत्ता म. भ. स. गु. । SSS. SII. IIS. S. । लक्षण-मिदम् ।

सरलार्थः–यस्य प्रतिपादं क्रमशः मगण भगण सगणो-

त्तरं गुर्वेकस्तिष्ठति तस्य मत्तानाम प्रसिद्धयति चतुर्भिः षड्भिरत्र यतिर्ज्ञेया ।

उदाहरणम्–

पीत्वा मत्ता मधुमधुवाली ,
कात्मीन्द्रये तटवनकुञ्जे ।
उद्दीत्यन्ती व्रजजनरामाः ,
प्रेमाविष्टा मधुजिति चक्रे ।।

(४०) **"नरजगैर्भवेन् मनोरमा"** । न. र. ज. गु. । ।।।. ऽ।ऽ. ।ऽ।. ऽ. । लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः–यस्य प्रत्येकचरणे क्रमशः नगण रगण जगणोत्तारमेको गुरुवर्णस्तिष्ठति तन् मनोरमानामकं छन्दः कथ्यते ।

उदाहरणम्–

निखिलदीनदुःखदारिणी ,
सकलबन्धुसंविभागकृत् ।
गुणिजनामृतार्णवोपमा ,
भवति सा रमा मनोरमा ।। छ. ।।

अथवा–

तरणिजा तटे विहारिणी,
व्रजविलासिनी विलासतः ।
मुररिपोस्तनुः पुनातु वः,
सुकृतशालिनां मनोरमा ॥

(४१) **"तो जौ गुरुणे यमुपस्थिता"** । त. ज. ज. गु. । SSI. ISI. ISI. S. । लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः–यत्र प्रत्येकचरणे क्रमात् तगण जगण जगणोत्तारमेको गुरुवर्णश्च विद्यते तदुपस्थितानामकं छन्दः कथ्यते । ३६५ तमोऽयं भेदः ।

उदाहरणम्–

एषा भवतः समराङ्गणे,
राजन् ! जयसिद्धिरुपस्थिता ।
कीर्त्तिः कुपितेव भवत्प्रिया,
सद्योऽभिसस्तर दिगन्तरम् ॥ छ. ॥

अथवा–

एषा जगदेकमनोहरा,
कन्या कनकोज्ज्वल दीधितिः ।
लक्ष्मीरिव दानवसूदनं,
पुण्यैर्नरनाथमुपस्थिता ॥

(४२) **"नि गौ निलया"** । न. न. न. गु. । नगण-त्रयं गुरुरेकश्च । ।।।. ।।।. ।।।. ऽ. । लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः—यत्र प्रत्येकपादे क्रमशः नगणत्रयोत्तरमेको गुरुवर्णः स्थाप्यते सा निलया नाम्ना प्रसिद्धा भवति। लक्षणपदे नकारोत्तारमिकारेण तृतीया संख्या बोधव्या यतः मातृकाशिक्षणे अ आ इ ई इत्यादाविकारस्तृतीयस्थाने भवति । निश्च गश्च इत्यनयोरितरेतरयोगः द्वन्द्वः ।

उदाहरणम्—

अपि सरिदाधिपतिसुता, हरिमपि परिहरति यत् ।
अधमपुरुषकृतरतिं, धिगदहकमलनिलयाम् ।।छ.।।

अथ त्रिष्टुप् प्रकरणम्

२०२८ भेदा भवन्त्यत्र । त्रिष्टुभिः सर्वस्मिन् भेदे ११ एकादशवर्णा भवन्ति । अथ अत्र प्रथमो भेद इन्द्रवज्रा दर्श्यते—

(४३) **"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः"** । त. त. ज. गु. गु. । ऽऽ।. ऽऽ।. ।ऽ।. ऽ. ऽ. । लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिपादं क्रमशः तगणद्वयानन्तरं जगणो

गुरुवर्णद्वयञ्च भवति तदिन्द्रवज्रा छन्दः कथ्यते । पादान्ते यतिरत्र जायते ।

उदाहरणम्–

स्व स्वागमाचार परायणानां ,
पुण्यात्मनां यः कुरुते विरुद्धम् ।
क्षोणीभुजस्तस्य भवत्यवश्यं ,
रौद्रेन्द्रवज्राभिहतस्य पातः ।। छ. ।।

अथवा–

गोब्राह्मणस्त्रीव्रतिभिर्विरुद्धं ,
मोहात् करोत्यल्पमतिर्नृपो यः ।
तस्येन्द्रवज्राभिहतस्य पातः ,
क्षोणीधरस्येन भवत्यवश्यम् ।।

अथवा–

एन्द्रीं श्रियं नाभिसुतः स दद्या-
दद्यापि धर्मस्थितिकल्पवल्ली ।
येनोप्तपूर्वा त्रिजगज्जनानां ,
नानान्तरानन्दफलानि सूते ।। १ ।।

[इति संदृब्धशतन्यायग्रन्थ-न्यायाचार्य-न्ययविशारद श्रीमद्यशोविजयवाचकवराणाम् ।]

इन्द्र-वज्रा छन्दः	तगणः	तगणः	जगणः	गु,	गु.
	एन्द्रींश्रि	यं नाभि	सुतः स	द	द्या।
	SSI	SSI	ISI	S	S

(४४) **"उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ"**। अथवा- **"उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौ सा"**। **सा इन्द्रवज्रा एव प्रथमे लघुवर्णे सति उपेन्द्रवज्रा स्यात्**। ज. त. ज. गु. गु.। ISI. SSI. ISI. S. S.। लक्षणमेतत्।

सरलार्थः—यस्मिन् क्रमशो जगणस्तगणो जगण-स्तदुत्तरं गुरुवर्णद्वयश्च तिष्ठति सा उपेन्द्रवज्रा कथ्यते।

उदाहरणम्—

दधासि धात्रीं विदधासि दुष्ट-
क्षमाभृतां निर्दलनं प्रसह्य।
कुमारपाल क्षितिपालकस्त्वं,
उपेन्द्रवज्रायुधयोस्तदत्र ॥ छ. ॥

अथवा—

जिता जगत्येष भवभ्रमस्तैः,
गुरूदितं ये गिरिशं स्मरन्ति।
उपास्यमान्यं कमलासनाद्यैः,
उपेन्द्रवज्रायुध - वारिनाथैः ॥ छ. ॥

अथवा–

सुवर्णवर्णो हरिणा सवर्णो,
मनोवनं मे सुमतिर्बलीयान् ।
गतस्ततो दुष्टकुदृष्टिराग-
द्विपेन्द्र ! नैव स्थितिरत्र कार्या ।। १ ।।

[इति वाचकश्रीक्षमाकल्याणकीयचैत्यवन्दनचतुर्विंशिकायाम् ।]

उपेन्द्र-वज्रा छन्दः	जगणः	तगणः	जगणः	गु	गु
	सुवर्ण	वर्णो ह	रिणा स	व	र्णो
	।ऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽ	ऽ

(४५) अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ ,
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु ,
स्मरन्ति जातिष्विदमेव नाम ।।

"इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोर्मिलितौ पादौ यस्यां सा उपजाति" । ज. त. ज. गु. गु. । ।ऽ।. ऽऽ।. ।ऽ।. ऽ. ऽ. । लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः—पूर्वोक्तयोश्छन्दसोश्चरणयोर्यत्र संकरः सा उपजातिः। अर्थाद् यत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोः पादौ मिलितौ तदुपजातिनामकं छन्दः कथ्यते। अत्र चतुर्ष्वेव चरणेषु साङ्कर्यमिष्टम्। यतः पादद्वयात्मकस्य छन्दसोऽभावात् तदुक्तमभियुक्तैः—

एकत्र पादे चरणद्वये वा,
पादत्रये वाऽन्यतरः स्थितिश्चेत्।
तयोरिहान्यत्र तदोहनीया-
श्चतुर्दशोक्ता उपजातिभेदाः॥

अत्र विशेषवस्तुज्ञानम्—

इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोः, स्वागता-रथोद्धतयोः, इन्द्रवंशा-वंशस्थयोः संकर एव उपजातिर्नान्यत्रेति सारः।

उदाहरणम्—

प्रायः पुमांसोऽभिनवार्थलाभे,
गुणोज्ज्वलेष्वल्पकृतादराः स्युः।
अवाप्यकुन्दं मधुपो हि जज्ञे,
गतोपजाति भ्रमराभिलाषः॥ छ.॥

अथवा–

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते,
जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् ।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां,
यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ॥ १ ॥

[इति रघुवंशकाव्ये कथितं कविकालिदासेन ।]

अथवा–

जिनेन्द्रपूजा गुरुपर्युपास्तिः,
सत्त्वानुकम्पा शुभपात्रदानम् ।
गुणानुरागः श्रुतिरागमस्य,
नृजन्मवृक्षस्य फलान्यमूनि ॥

[इति सूक्तिमुक्तावल्यां प्रोक्तमाचार्यश्रीसोमप्रभसूरिणा ।]

उपजातिः छन्दः	जगणः	तगणः	जगणः	गु,	गु,
	जिनेन्द्र	पूजा गु	रुपर्यु	पा	स्तिः
	।ऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽ	ऽ

(४६) "न ज ज लगैर्गदिता सुमुखी" । न. ज. ज. ल. गु. । ।।।. ।ऽ।. ।ऽ।. ।. ऽ. लक्षणपदमेतत् ।

सरलार्थः—यत्र प्रत्येकपादे नगण जगण जगणोत्तरं लघुर्गुरुश्च वर्णो भवति तस्य सुमुखी नाम विज्ञेयम् ।

उदाहरणम्—

कनकरुचिर्घनपीनकुचा—
मनसिजविभ्रमकेलिगृहम् ।
चलनयना नव-कुन्ददती,
न हरति कस्य मनः सुमुखी ॥ छ. ॥

अथवा—

तरणिसुता - तटकुञ्जगृहे,
वदनविधुस्थित - दीधितिभिः ।
तिमिरमुदस्य मुखं सुमुखी,
हरिमवलोक्य जहास चिरम् ॥

(४७) **"दोधकवृत्तमिदं भ भ भाद् गौ"** । भ. भ. भ. गु. गु. । ऽ।।. ऽ।।. ऽ।।. ऽ. ऽ. लक्षणपदमिदम् ।

अथवा—

"दोधकमिच्छति भत्रितयाद् गौ" । लक्षणपदमेतत् ।

सरलार्थः—यत्र क्रमशो भगणत्रयानन्तरं गुरुवर्णद्वयं स्यात् तद् दोधकनामकं छन्दो भवति ।

उदाहरणम्–

पुष्करमम्बुदगर्जित - धीरैः,
श्रव्यमदोधक धोंकृतिनादैः।
व्यञ्जितपाठकृतिध्वनि-पाद-
न्यासमसाविह नृत्यति सुभ्रूः ।। छ. ।।

अथवा–

दोधकमर्थविरोधकमुग्रं,
स्त्रीचपलं युधि कातरचित्तम्।
स्वार्थपरं मतिहीनममात्यं,
मुञ्चति यो नृपतिः स सुखी स्यात् ।। १ ।।

	भगणः	भगणः	भगणः	गु,	गु,
दोधक	दोधक	मर्थवि	रोधक	मु	ग्रम्
वृत्तम्	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ	ऽ

(४८) **"शालिन्युक्ता, म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः"** ।
म. त. त. गु. गु. । ऽऽऽ. ऽऽ।. ऽऽ।. ऽ. ऽ. लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र मगण-तगण-तगणोऽन्तरं गुरुद्वयं प्रतिपादं भवति तच्छन्दः शालिनीनाम्ना प्रसिद्ध्यति । एतदस्मिन् वृत्तौ चतुर्भिः सप्तभिश्च विरामः स्यात् ।

उदाहरणम्–

उर्मी भङ्गी निर्मिमाणाधुनीनां,
व्यातन्वाना वीरुधालास्यलीलाम् ।
उज्जृम्भन्ते शालिनी वार पाक-
स्फारा मोदाः शारदा वायवोऽमी ।। छ. ।।

अथवा–

अहं हन्ति ज्ञानवृद्धिं विधत्ते,
धर्मं दत्ते कार्यमर्थं प्रसूते ।
मुक्तिं दत्ते सर्वदोपास्यमाना,
पुंसां श्रद्धाशालिनी विष्णुभक्तिः ।।

अथवा कृतिर्मम–

पापं हन्ति, धर्मवृद्धिं विधत्ते,
कामं दत्ते, श्रीं समृद्धिं च दत्ते ।
मोक्षं धत्ते, पूज्यमाना सदा वै,
नॄणां श्रद्धा-शालिनी देवपूजा ।।१।।

शालिनी छन्दः	मगणः	तगणः	तगणः	गु,	गु,
	पापं ह	न्ति धर्म	वृद्धि वि	ध	त्ते
	ऽऽऽ	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ	ऽ

(४९) **"वातोर्मीयं गदिताम्भौ तगौ गः"** । अथवेत्थं लक्षणं ज्ञेयम्—**"म भ ता गौ वातोर्मी"** । म. भ. त. ग. ग. । SSS. SII. SSI. S. S. ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिचरणं मगण भगण तगणोत्तरं गुरुवर्णद्वयं भवति तद् वातोर्मी नामकं छन्दो भवति । चतुर्थे सप्तमे च विरामः ।

उदाहरणम्—

त्वच्छत्रूणां विपिनं प्रस्थितानां,
क्षिप्तः प्रांशु दृक्षि वातोर्मीकाभिः ।
तापः सूर्येण च मूर्ध्नि प्रकीर्णः,
को वा नास्कन्दति संप्राप्तभङ्गान् ।।छ.।।

अथवा—

ध्याता मूर्तिः क्षणमप्यच्युतस्य,
श्रेणी नाम्नां गदिता हेतयापि ।
संसारेऽस्मिन् दुरितं हन्ति पुंसां,
वातोर्मीपोतमिवाम्भोधिमध्ये ।।

वातोर्मी छन्दः	मगणः	भगणः	तगणः	गु,	गु,
	ध्याता मू	र्त्तिः क्षण	मप्यच्यु	त	स्य
	SSS	SII	SSI	S	S

(५०) **"पञ्चरसैः श्री भं त न ग गैः स्यात्"**
भ. त. न. ग. ग. । ऽ।।. ऽऽ।. ।।।. ऽ. ऽ. लक्षण-पदमेतत् ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिचरणं क्रमशः भगण-तगण-नगणोत्तरं गुरुवर्ण द्वयं तिष्ठति तस्य छन्दस्य श्रीः नाम प्रसिद्ध्यति । इयं श्रीरेव अग्रे मौक्तिकमाला नाम्ना प्रख्याताऽस्ति ।

उदाहरणम्—

या सुजनानामुपकाराय ,
प्रद्विषतां च प्रतिकरणाय ।
मानधनानां मनसि नराणां ,
श्रीरितरा स्यात् परिकरमात्रम् ।।छ.।।

अथवा—

शोभनवर्णा सुविशदजातिः ,
सुक्रमराजद् गुरुलघुयुक्ता ।
सद्यति रम्यो बुधहृदि छन्दो ,
मौक्तिकमाला विलसति हृद्या ।।

मौक्तिक - माला छन्दः	भगणः	तगणः	नगणः	गु	गु
	शोभन	वर्णा सु	विशद	जा	तिः
	SII	SSI	III	S	S

(५१) "म्भौ न्लौ गः स्याद् भ्रमरविलसितम् ।"
म. भ. न. ल. ग. । SSS. SII. III. I. S.

अथवा–

"म भ ना लघुगुरुश्च भ्रमरविलसितम् ।" लक्षण-पदमेतत् ।

सरलार्थः–यस्य प्रतिपादं क्रमशः मगण-भगण-नगणोत्तरं लघु गुरु वर्णश्च भवति तद् भ्रमरविलसित-नामकं छन्दः कथ्यते । चतुर्थे सप्तमे च यतिर्जायतेऽत्र ।

उदाहरणम्–

प्रत्याख्याताप्यसि कमलवनं,
याता तत् किंकरतलचलनैः ।
मुग्धे विद्धि स्फुटकमलधिया,
वक्त्रा पाति भ्रमरविलसितम् ।। छ. ।।

अथवा–

किन्ते वक्त्रं चलदलकचितं,
किं वा पद्मं भ्रमरविलसितम् ।
इत्येवं मे जनयति मनसि,
प्रीतिं कान्ते परिसर सरसि ॥

भ्रमर-विलसितं वृत्तम्	मगणः	भगणः	नगणः	ल,	गु,
	किन्ते व	क्त्रं चल	दलक	चि	तं
	SSS	SII	III	I	S

(५२) **"रनरा लघु गुरू च रथोद्धता ।"** **अथवा–** **"रात्परैर्नरलगै रथोद्धता ।"** र. न. र. ल. गु. । SIS. III. SIS. I. S. लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशः रगण नगण रगणोत्तरं लघुगुरुवर्णौ भवतः सा रथोद्धता प्रख्यायते । पादान्ते यतिरत्र । अर्थात्–यत्र रगणः नगणः रगणः लघुः गुरुश्च सा रथोद्धतानामकं छन्दः ।

उदाहरणम्–

तावकीन कटके रथोद्धता,
धूलयो जगति कुर्य्युरन्धताम् ।
चेदिमाः करि घटा मदाम्भासा,
भूयसा प्रशमयेन्न सर्वतः ॥ छ. ॥

अथवा–

किं त्वया सुभटदूरवर्जितं,
नात्मनो न सुहृदां प्रियं कृतम् ।
यत् पलायनपरायणस्य ते,
याति धूलिरधुना रथोद्धता ॥

यथा कृतिर्मम–

श्रीजिनेश्वरमुखाम्बुजाद् वरा-
न्निःसृतामृतरसागमेदुरम् ।
जैनधर्ममवदात्तमद्भुतं ,
अद्वितीयमचलं च नौम्यहम् ॥

रथोद्धता छन्दः	रगणः	नगणः	रगणः	ल,	गु.
	श्रीजिने	श्वरमु	खाम्बुजा	व	रात्
	SIS	III	SIS	I	S

(५३) **"स्वागतेति रनभाद् गुरु युग्मम् ।"** र. न. भ. गु. गु. । SIS. III. SII. S. S. । लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशः रगण नगण भगणोत्तरं गुरुवर्णद्वयञ्च भवति स्वागतानाम छन्दः कथ्यते । अर्थात्–

यत्र रगण-नगण-भगणाः गुरु-युग्मं च सा स्वागता इति ।

उदाहरणम्–

वल्लभं सुरभिमित्रमतङ्ग,
दाक्षिणात्यपवनं सुहृदं च ।
पृच्छतीह परपुष्ट - विघुष्टैः,
स्वागतानि नियतं वनलक्ष्मीः ॥ छ. ॥

अथवा–

रत्नभङ्गविमलैर्गुणतुङ्गै-
रर्थिनामभिमतार्पणशक्तैः ।
स्वागताभिमुखनम्रशिरस्कै-
र्जीव्यते जगति साधुभिरेव ॥ १ ॥

यथा–

इन्दुकुन्दधवलामिति कीर्तिं,
कीर्त्तयामि कियतीं तव नाथ ! ।
मन्दबुद्धिरपि किञ्चन वच्मि,
त्वद् गुणौघमुखरीकृतजिह्वः ॥

[इति श्रीजयकेसरिसूरिरचितश्रीअरनाथजिनेन्द्रस्तवने प्रोक्तम् ।]

स्वागता छन्दः	रगणः	नगणः	भगणः	गु,	गु,
	इन्दुकु	न्दधव	लामिति	की	र्ति
	ऽ।ऽ	।।।	ऽ।।	ऽ	ऽ

(५४) **"नौ सो गौ वृन्ता"**। वृन्तेति पिङ्गलसूत्रनाम । न. न. स. गु. गु. । ।।।. ।।।. ।।ऽ. ऽ. ऽ. लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिचरणं क्रमशः नगण-नगण-सगणोत्तरं गुरुद्वयं च भवति तस्य **वृत्ता** अथवा **वृन्तानाम** प्रसिद्धमस्ति ।

उदाहरणम्—

जिनपति - गुरुपद - पीठे यो-
ऽशठमतिरिह लुठति प्रीत्या ।
विलगति निखिलमद्यं तस्माद्,
परिणत - फलमिववृन्तात् ।। छ. ।।

अथवा–

द्विज-गुरु-परिभवकारी यो,
नरपतिरतिधन - लुब्धात्मा ।
ध्रुवमिह निपतति पापोऽसौ,
फलमिव पवनहतं वृन्तात् ॥

वृन्ता [वृत्ता] छन्दः	नगणः	नगणः	सगणः	गु,	गु,
	जिनप	तिगुरु	पदपी	ठे	यो
	।।।	।।।	।।S	S	S

(५५) **"न न र ल गुरुभिश्च भद्रिका ।"** न. न. र. ल. गु. । ।।।. ।।।. S।S. ।. S. लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं नगण-नगण-रगणोत्तरं लघु-गुरुश्च वर्णौ भवतः सा भद्रिका कथ्यते । पादान्तेऽत्र यतिर्जायते ।

उदाहरणम्–

सकल-दुरितनाशकारिणी,
यदभिलषितकामपूरणी ।
भगवति तव मूर्त्तिरेकिका,
मम मनसि सदाऽस्तु **भद्रिका** ॥ छ. ॥

अथवा–

परिहर नितरां परापवादं,
कुरु जिनवचनेऽनुरागिताम् ।
इति तव चरतः परे भवे,
भवतु सपदि **भद्रिका** गतिः ।।

भद्रिका छन्दः	नगणः	नगणः	रगणः	ल,	गु,
	सकल	दुरित	नाशका	रि	णी
	।।।	।।।	ऽ।ऽ	।	ऽ

(५६) **"श्येनिका रजौ रलौ गुरु यदा"** । र. ज. र. ल. गु. । ऽ।ऽ. ।ऽ।. ऽ।ऽ. ।. ऽ. लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिचरणं क्रमशः रगण जगण रगणोत्तरं लघुर्गुरुश्च भवति तस्य **श्येनिका** नाम कथ्यते । पादान्तेऽत्र यतिर्जायते ।

उदाहरणम्–

भ्रान्तगृध्रवृन्दकङ्कमण्डल-
श्येनिका त्वदीय वैरिवाहिनी ।
आपतत् कृतान्तद्ररौ किङ्कर-
व्याकुलेव लक्ष्यते क्षमापने ।।छ.।।

अथवा–

यस्य कीर्त्तिरिन्दुकुन्दचन्दन,
श्येन - शेषलोकपावनी सदा ।
जाह्नवीव विश्ववन्द्यनिम्नगा -
भजामि भावगम्यमच्युतम् ॥

श्येनिका छन्दः	रगणः	जगणः	रगणः	ल,	गु,
	यस्य की	र्त्तिरिन्दु	कुन्द च	न्द	न
	SIS	ISI	SIS	I	S

(५७) **"मौक्तिकमाला यदि भतनाद् गौ"** । भ. त. न. गु. गु. । SII. SSI. III. S. S. लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः–[सूचना–] अस्य श्रीनामकं छन्दोवत् सर्वं विज्ञेयमिति पूर्वमेव भणितमस्ति ।

यथा–भतना गुरुद्वयञ्च श्रीरीतिपूर्वलक्षणं स्मरणीयम् । अस्या **रुचिरा** इत्यप्यपरं नाम कथितमस्ति भरतेन ॥

(५८) **"तो जौ गावुपस्थिता कथिता"** । त. ज. ज. गु. गु. । SSI. ISI. ISI. S. S. लक्षणपदमेतत् ।

सरलार्थः—यस्य प्रतिपादं क्रमशः तगण-जगण-द्वयोत्तरं गुरुवर्णद्वयं तिष्ठति तस्य **उपस्थिता** नाम छन्दो भवति ।

उदाहरणम्—

या मानमहाविषघूर्णिताङ्गी ,
माऽभूत् कलयाऽपि वशंवदा ते ।
लोलन्मलयानिलदोलितात्मा ,
प्रीत्या स विलासमुपस्थिता सा ॥

उपस्थिता छन्दः	तगणः	जगणः	जगणः	गु,	गु,
	यामान	महावि	षघूर्णि	ता	ङ्गी
	SSI	ISI	ISI	S	S

(५९) **"उपस्थितमिदं ज्सौ ताद् गकारौ"** । ज. स. त. गु. गु. । ISI. IIS. SSI. S. S. लक्षणमेतत् । अथवा—**"जसता गुरुद्वयञ्च उपस्थितम्"** । इत्यपि लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः—यस्य प्रतिचरणं क्रमशः जगण सगण तगणोत्तरं गुरुवर्णद्वयं तिष्ठति तदुपस्थितनामकं छन्दः कथ्यते ।

उदाहरणम्-

शिलीमुखतति सत्पक्षनादं,
मुहुर्निदधतं वाणासनाङ्के ।
पुरः सरदुतु संप्रेक्ष्य राजन्,
उपस्थितमरिक्षचामेव मेने ॥

उपस्थित-छन्दः	जगणः	सगणः	तगणः	गु,	गु,
	शिलीमु	खततिः	सत्पक्ष	ना	दं
	।ऽ।	।।ऽ	ऽऽ।	ऽ	ऽ

अथ जगती छन्दसो विवेचनम्

प्रस्तारक्रमेणास्य ४०९६ भेदा भवन्ति । जगत्याः सर्वे भेदा द्वादश [१२] वर्णात्मका भवन्ति ।

(६०) **"चन्द्रवर्त्मगदितं तु र न भ सैः"** । र. न. भ. स. । ऽ।ऽ. ।।।. ऽ।।. ।।ऽ. लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः—यस्य प्रतिचरणं क्रमशः रगण-नगण-भगण-सगणाः भवन्ति तस्य चन्द्रवर्त्मनाम विज्ञेयम् ।

उदाहरणम्-

सैंहिकेय-भयविह्वलमनसः,
स्वप्रभाभिरिह दक्षमुनिसुताः ।
नाममात्रमपि सोढुमपटवश्,
चन्द्रवर्त्म रचयन्ति हततमः ॥छ.॥

अथवा–

चन्द्रवर्त्मनिहतं घनतिमिरैः,
राजवर्त्मरहितं जनगमनैः।
इष्टवर्त्म तदलङ्कुरु सरसे,
कुञ्जवर्त्मनि हरिस्तव कुतुकी ॥

चन्द्रवर्त्म-छन्दः	रगणः	नगणः	भगणः	सगणः
	चन्द्रव	र्त्म निह	तं घन	तिमिरैः
	ऽ।ऽ	।।।	ऽ।।	।।ऽ

(६१) **"जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ"**। ज. त. ज. र.। ।ऽ।. ऽऽ।. ।ऽ।. ऽ।ऽ. लक्षणपदमिदम्।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशः जगण-तगण-जगण-रगणाः स्थिता भवन्ति तद् **वंशस्थ** नामकं छन्दः कथ्यते। अर्थात् यत्र जगण-तगणौ जगण-रगणौ च भवेतां तद् **वंशस्थवृत्तम्**। पादान्ते यतिरत्र विज्ञेया। पिङ्गलसूत्रे वंशस्थाऽस्य नाम विद्यते, क्वचिद् वंशस्थविलमित्यपि नाम दृश्यते।

उदाहरणम्–

पुरुरवो नाहुषि पूरवः पुरा,
दधुर्धरां धारयतेऽधुना भवान्।
अपूर्वमेतच्चरितं न तावकं,
वदन्ति वंशस्थमिदं महीयते ॥ छ. ॥

अथवा–

विशुद्ध-वंशस्थ-मुदार-चेष्टितं,
गुणप्रियं मित्र मुपात्त सज्जनम्।
विपत्तिमानस्य करावलम्बनं,
करोति यः प्राणपरिक्रमेण वै ॥

यथा-नैषधीयकाव्येऽपि–

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथा -
स्तथाद्रियन्ते न बुधा सुधामपि।
नलः सितच्छत्रितः कीर्तिमण्डलः,
स राशिरासीन् महसां महोज्ज्वलः ॥ १ ॥

वंशस्थ वृत्तम्	जगणः	तगणः	जगणः	रगणः
	विशुद्ध	वंशस्थ	मुदार	चेष्टितं
	ISI	SSI	ISI	SIS

(६२) **"स्यादिन्द्रवंशाततजौ रसं युतौ"** । त. त. ज. र. । ऽऽ।. ऽऽ।. ।ऽ।. ऽ।ऽ. लक्षणमेतत् ।

अथवा–

"जगत्यां तौ ज्राविन्द्रवंशा" । लक्षणपदमिदम् । ३६ भेदाः भवन्त्यस्य ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशः तगण-तगण-जगण-रगणाः भवन्ति तस्य **इन्द्रवंशा** नाम कथ्यते ।

विशेषवस्तु–अत्राऽपि वंशस्थेन्द्रवंशयोर्योगेन उपजाति-नाम छन्दो जायते इति पूर्वोक्तं स्मरणीयम् ।

उदाहरणम्–

कुर्वीत यो देव गुरु द्विजन्मना-
मूर्वीपतिः पालनमर्थलिप्सया ।
तस्येन्द्रवंशेऽपि गृहीतजन्मनः,
सञ्जायते श्रीः प्रतिकूलवर्तिनी ।। वृ. ।।

अथवा–

दारेषु सुग्रीव-कपीश्वरस्य यत्,
रागानुबन्धं सहसा व्यपश्चयः ।
तत् ते प्रवङ्गाधिपतेः किमुच्यते,
हन्तेन्द्र वंशानुगुणं त्वयाकृतम् ।। छ. ।।

इन्द्रवंशा वृत्तम्	तगण:	तगण:	जगण:	रगण:
	दारेषु	सुग्रीव:	कपीश्व	रस्ययत्
	SSI	SSI	ISI	SIS

(६३) "इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम् ।" स. स. स. स. । IIS. IIS. IIS. IIS. **"सगणचतुष्कं यत्र तत् तोटकम् ।"** लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः—चतुर्भिः सगणैस्तोटकं सम्पद्यते । तदुक्तं-सीस्तोटकम् । यत्र प्रतिपादं क्रमशश्चाचारः सगणा भवन्ति, तच्छन्दस्तोटकं कथ्यते । पादान्ते यतिरत्र ।

उदाहरणम्—

त्यज तोटकमर्थनियोगकरं,
प्रमदाऽधिकृतं व्यसनोपहतम् ।
उपधाभिरशुद्धमतिं सचिवं,
नरनायकभीरुकमायुधिकम् ॥

अथवा—

परलोकविरुद्धकुकर्मरतं ,
बहिरार्जवमादधतं कुटिलम् ।
विषकुम्भमिवेद्ध सुधापिहितं ,
त्यजमित्रमतोटकतैकगुणम् ॥

अत्र टिप्पणी–कलहे सत्यपि कार्याच्छेदः–अतोटकता सेवाया अत्याग एव एको गुणो यस्य तादृशं मित्रमिति हृदयम् ।

यथा–

मणिना वलयं वलयेन मणि-
मणिना वलयेन विभाति करः ।
पयसा कमलं कमलेन पयः,
पयसा कमलेन विभाति सरः ॥ १ ॥

तोटक वृत्तम्	सगणः	सगणः	सगणः	सगणः
	मणिना	वलयं	वलये	न मणिः
	।।ऽ	।।ऽ	।।ऽ	।।ऽ

(६४) **"द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ"** । न. भ. भ. र. । ।।।. ऽ।।. ऽ।।. ऽ।ऽ. । लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिचरणं क्रमशो नगण-भगण-भगण-रगणाः भवन्ति । तस्य द्रुतविलम्बितमिति विज्ञेयम् । तदुक्तं नभभ्राः–द्रुतविलम्बितमिति । अर्थात्–यत्र छन्दसि नगण-भगणौ भगण-रगणौ च तद्द्रुतविलम्बितमिति ।

उदाहरणम्–

इतर पापशतानि यदृच्छया,
विलिखितानि सहे चतुरानन ।
अरसिकेषु कवित्व - निवेदनं,
शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख ।।

अन्यच्च–

परुष सान्द्रवचो रचनाञ्चिता,
रुदितहासविलोलविलोचना ।
अवचनं कथयत्यपि रागितां,
द्रुतविलम्बित-चित्र गतैरियम् ।।

अथवा–

विपुलनिर्भरकीर्त्तिभरान्वितो,
जयति निर्जरनाथ - नमस्कृतः ।
लघुविनर्जित मोह धराधियो,
जगति यः प्रभु शान्ति जिनाधिपः ।। १ ।।

द्रुतविल-म्बित वृत्तम्	नगणः	भगणः	भगणः	रगणः
	विपुल	निर्भर	कीर्त्तिभ	रान्वितो
	।।।	।।S	S।।	S।S

(६५) **"वसु युग विरति नौ म्यौ पुटोऽयम्"** । न. न. म. य. । ।।।. ।।।. SSS. ।SS. लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः—यस्य प्रतिपादं क्रमशः नगण-नगण-मगण-*यगणा भवन्ति तत्पुटमितिनामकं छन्दः कथ्यते।* अत्राष्टमे चतुर्थे च विरतिर्भवति ।

उदाहरणम्—

न विचलति कथंचिन्न्यायमार्गात्,
वसुनि शिथिलमुष्टिः पार्थिवो यः ।
अमृत पुट इवाऽसौ पुण्यकर्मा,
भवति जगति सेव्यः सर्वलोकैः ।।

	नगणः	नगणः	मगणः	यगणः
पुट-वृत्तम्	न विच	लति क	थंचिन्न्या	यमार्गात्
	।।।	।।।	SSS	।SS

(६६) **"प्रमुदितवदना भवेन्नौ च रौ"** । न. न. र. र. । ।।।. ।।।. S।S. S।S. अथवा—नौ रौ प्रमुदितवदना *स्यात् । लक्षणपदमिदम् ।*

सरलार्थः—यत्र प्रतिचरणं क्रमशो नगणद्वयं ततो रगण-

द्वयश्च भवति तत् **प्रमुदितवदना** नामकं छन्दो ज्ञेयम्। इयञ्च चञ्चलाक्षिकापि कथ्यते। गौरित्यपि नामान्तरम्।

उदाहरणम्–

अतिसुरभिरभाजि पुष्पश्रिया,
मतनुतरतयैव सन्तानकः।
तरुणपरभृतः स्वनं रागिणा-
मतनुत रतये वसन्तानकः॥

अथवा–

स्खलित वचसि भर्तरि भ्रूकुटिं,
प्रियसखि घटयेत्यपि प्रेरिता।
अविदितरस-विभ्रमा बालिका,
प्रमुदितवदना भवत्युन्मुखी॥ छ.॥

प्रमुदित-वदना छन्दः	नगणः	नगणः	रगणः	रगणः
	स्खलित	वचसि	भर्तरि	भ्रूकुटि
	।।।	।।।	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ

(६७) "रसै र्जस जसा जलोद्धतगतिः"। ज. स. ज. स.। ।ऽ।. ।।ऽ. ।ऽ।. ।।ऽ.। लक्षणमेतत्।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशः जगण-सगण-जगण-सगणास्तिष्ठन्ति तत् **जलोद्धतगति**नामकं छन्दो भवति। षड्भिः २ विरामोऽत्र।

उदाहरणम्–

यदीय हलतो विलोक्य विपदं,
कलिन्दतनया जलोद्धतगतिः।
विलासविपिनं विवेशहससा,
करोतु कुरलं हली सजगताम्॥

अथवा–

विकासि कुसुमं सदा फलयुतं,
निसर्गशिशिरं तटे विपिनम्।
निपातितवती हहा सरिदियं,
निकाम कलुषा जलोद्धतगतिः॥

(६८) "**भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः**"। य. य. य. य.। ।SS. ।SS. ।SS. ।SS.। अथवा–"**भुजङ्गप्रयातं भवेद्यैश्चतुर्भिः**"। लक्षणपदमिदम्।

सरलार्थः–यस्मिन् प्रतिपादं क्रमशः चत्वारो यगणाः सन्ति तद् **भुजङ्गप्रयात**नामकं छन्दः कथ्यते। अर्थात्–यगणचतुष्कं यत्र तद् भुजङ्गप्रयातं छन्दो वर्तते।

उदाहरणम्–

स्वदारात्मजज्ञातिभृत्यं विहाय,
स्वमेतं हृदं जीवनं लिप्समानः ।
मया क्लेशितः कालिकेत्थं कुरुत्वं,
भुजङ्गप्रयात द्रुतं सागराय ॥

अथवा–

न सूरिः सुराणां गुरुर्नासुराणां,
पुराणां रिपुर्नापि नापि स्वयंभूः ।
खला एव विज्ञाश्चरित्रे खलानां,
भुजङ्गप्रयातं भुजङ्गा विदन्ति ॥

भुजङ्ग-प्रयातं वृत्तम्	यगणः	यगणः	यगणः	यगणः
	न सूरिः	सुराणां	गुरुर्ना	सुराणां
	ISS	ISS	ISS	ISS

(६९) **"चत्वारो रगणाः यत्र स्रग्विणी सा प्रकीर्तिता"** । र. र. र. र. । SIS. SIS. SIS. SIS. लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः–यत्र क्रमशः प्रतिचरणं चत्वारो रगणाः प्रभवन्ति तस्य **स्रग्विणी**नामकं छन्दः प्रख्यातं भवति ।

उदाहरणम्-

इन्द्रनीलोत्पलेनेव सा निर्मिता,
शात कुम्भ द्रवाऽलङ्कृता शोभते।
नव्यमेघच्छविः पीतवासाहरे,
मूर्त्तिरास्तां जयायोरसि स्रग्विणी॥

अथवा-

तारका मल्लिका मालिका मालिनी,
चारु चक्रप्रभा केतकी शालिनी।
भोगभाजां भुजङ्गेश्वराणां प्रिया,
सेयमुज्जृम्भते शर्वरी स्रग्विणी॥

स्रग्विणी-छन्दः	रगणः	रगणः	रगणः	रगणः
	इन्द्र नी	लोत्पले	नेव सा	निर्मिता
	SIS	SIS	SIS	SIS

(७०) **"भुविभवेन्नभजरैः प्रियंवदा"**। न. भ. ज. र.। III. SII. ISI. SIS. लक्षणमेतत्।

सरलार्थः-यत्र प्रतिपादं क्रमशः नगण-भगण-जगण-रगणाः भवन्ति तत् **प्रियंवदा**नामकं छन्दः कथ्यते। पादान्तेऽत्र यतिः।

उदाहरणम्–

प्रणय - तत्परमिमं सखिप्रियं,
मधुर मालपमयैव शिक्षिता।
विधुरिता समदकोकिलभारवै -
र्यदि भविष्यसि मधौ प्रियंवदा ॥ छ. ॥

प्रियंवदा छन्दः	नगणः	भगणः	जगणः	रगणः
	प्रणय	तत्पर	मिमं स	खिप्रियं
	।।।	ऽ।।	।ऽ।	ऽ।ऽ

(७१) **"त्यौ त्यौ मणिमाला छिन्ना गुरुवक्त्रैः"**।
त. य. त. य। ऽऽ।. ।ऽऽ. ऽऽ।. ।ऽऽ. लक्षणमिदम्।

सरलार्थः--यत्र क्रमशः तगण-यगण-तगण-यगणाः प्रतिपादं भवन्ति तस्य **मणिमाला** नाम बोधव्यमिति।

उदाहरणम्–

सन्तोषधनानां का नाम समृद्धि -
श्चारित्रक्षुधाप्तौ धिक्कामपि पाज्ञाम्।
निर्वीजसमाधावास्तां सुरसौख्यं,
जैनी यदि कण्ठे वाक् किं मणिमाला ॥ छ. ॥

मणिमाला छन्दः	तगणः	यगणः	तगणः	यगणः
	सन्तोष	धनानां	का नाम	समृद्धिः
	SSI	ISS	SSI	ISS

(७२) "धीरैरभाणि ललिता तभौ जरौ"। त. भ. ज. र.। SSI. SII. ISI. SIS. लक्षणपदमिदम्।

सरलार्थः–यत्र प्रतिचरणं क्रमशः तगण-भगण-जगण-रगणाः भवन्ति तस्य **ललिता** नाम प्रसिद्ध्यति। तगणात् परं भजराश्चेत् तदा ललितेति यावत्।

उदाहरणम्–

ग्रामेऽत्र पाप ! कलहंसतां दधद्,
धत्से त्रपां न हि किमन्ध ? भाव्यताम्।
रम्यं वपुर्न मधुरं न ते रुतं,
रे काक पाक ललिता न गतिः॥ छ.॥

अथवा–

तास्ते पुरत्रयमतीत्य सुन्दरी-
गीता ततस्त्रिपुरसुन्दरी भुवि।
लोकानतीत्य ललने यतो हि सा,
भक्तैरभाणि ललिताभिधानतः॥

ललिता छन्दः	तगणः	भगणः	जगणः	रगणः
	तास्ते पु	रत्रय	मतीत्य	सुन्दरी
	SSI	SII	ISI	SIS

(७३) **"जगाविह मौक्तिकदाम ज जौ च"** । ज. ज ज. ज. । ISI. ISI. ISI. ISI. अथवा—"चतुर्जगणं वद मौक्तिकदाम" । लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिपादं क्रमशश्चत्वारो जगणाः विलसन्ति, तस्य **मौक्तिकदाम**नामकं छन्दो भवति ।

उदाहरणम्—

समाधि पयोधि निमग्नमदीन -
मनीहमकाममभावमनाधि ।
जिनेन्द्र मनो मम वाञ्छति नाम ,
न विभ्रमधाम न मौक्तिकदाम ।। छ. ।।

मौक्तिक-दाम छन्दः	जगणः	जगणः	जगणः	जगणः
	समाधि	पयोधि	निमग्न	मदीन
	ISI	ISI	ISI	ISI

(७४) **"नजजयास्तामरसम्"** । न. ज. ज. **य** ।
।।।. ।S।. ।S।. ।SS. लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिचरणं क्रमशो नगण-जगण-जगण-यगणाः सन्ति, तस्य **तामरसं** नाम प्रख्याति ।

उदाहरणम्–

सततविकाससमुद्धरशोभं ,
सकलकलङ्ककलापरिमुक्तम् ।
तव वदनं मदिराक्षि किमेतत् ,
भवति न **तामरसं** न च **चन्द्रः** ।। छ. ।।

तामरसः छन्दः	नगणः	जगणः	जगणः	यगणः
	सतत	विकास	समुद्ध	रशोभं
	।।।	।S।	।S।	।SS

(७५) **"प्रमिताक्षरा सजससैरुदिता"** । स. ज. स. स. । ।।S. ।S।. ।।S. ।।S. लक्षणपदमेतत् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशः सगण-जगण-सगण-सगणाः भवन्ति, तस्य **प्रमिताक्षरा** नाम प्रख्यातं भवति ।

उदाहरणम्–

बहुभिः किमालपितैः कुधियां,
सरसाभिधेय - घटना - रहितैः ।
रसभावभावितधियां हि वरं,
प्रमिताक्षरापि रचनार्थवती ।। छ. ।।

अस्यापरं नाम चित्राप्यस्तीति कविमतम् ।

(७६) **"पश्चाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ"** । अथवा–"मौ यौ वैश्वदेवी ङैः" । म. म. य. य. । ऽऽऽ. ऽऽऽ. ।ऽऽ. ।ऽऽ. लक्षणपदमेतत् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिचरणं क्रमशः मगणद्वयं यगणद्वयञ्च भवति, तस्य **वैश्वदेवी** नाम विज्ञेयम् ।

अस्य चन्द्रकान्तेत्यपि नामान्तरमिति कविमतम् ।

उदाहरणम्–

अर्चामन्येषां त्वं विहायामराणा-
मद्वैतेनैकं विष्णुमभ्यर्च्य भक्त्या ।
तत्राशेषात्मन्यर्चिते भाविनी ते,
भ्रातः सम्पन्नाराधना वैश्वदेवी ।।

अथवा–

जिष्णुर्वित्तेशो धर्मराजः प्रचेताः,
ईशः श्रीनाथस्तेजसां धाम चेति ।
यावत्त्वं प्रख्यातः श्रीचुलुक्यक्षितीश !,
ब्रूमस्तेनेयं वैश्वदेवी तनुस्ते ।।

वैश्वदेवी वृत्तम्	मगणः	मगणः	यगणः	यगणः
	जिष्णुर्वि	त्तेशो ध	र्मराजः	प्रचेताः
	SSS	SSS	ISS	ISS

(७७) **"भवति नजावथ मालती जरौ"** । न. ज. ज. र. । III. ISI. ISI. ISS. लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र क्रमशः प्रतिचरणं नगण-जगण-जगण-रगणा भवन्ति, तस्य **मालती** नाम प्रख्यातं जायते । अस्य वरतनुरित्यपि नामास्ति ।

उदाहरणम्–

भ्रमरसखे व्रज यत्र सा प्रिया,
कथय दशामिति मे तदग्रतः ।
अभिनवपुष्पितरम्यमालती,
परिमलमुल्लसितं पिवाथ वा ।। छ. ।।

मालती वृत्तम्	नगणः	जगणः	जगणः	रगणः
	भ्रमर	सखे व्र	ज यत्र	सा प्रिया
	।।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ

अथ त्रयोदशाक्षर अतिजगती छन्दो वर्णनम्–

तस्य १९२ भेदाः भवन्ति ।

(७८) **"तुरगरसयतिनौं ततो गः क्षमा"** । न. न. त. र. गु. । ।।।. ।।।. ऽऽ।. ऽ।ऽ. ऽ. । लक्षणपदमिदम् ।

नौ त्रौ गः क्षमा ख्याता,
चन्द्रिकाऽपि च कथ्यते ।
यतिः षष्ठे ततः पश्चात्,
सप्तमेऽपि च कथ्यते ।।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशः नगणद्वयं ततस्तगण-रगणोत्तरमेको गुरुवर्णास्तिष्ठति, तस्य **क्षमा** नाम बोधव्यम् ।

उदाहरणम्–

अयि जडयति बन्धो किमङ्गशौचैः,
क्वचिदपि सुकृतं स्यान्मुधासि मूढः ।
यदिह च परलोके च साधुतत्त्वं,
शृणु कुरु हृदयस्थां क्षमामजस्रम् ।। छ. ।।

क्षमा वृत्तम्	नगणः	नगणः	तगणः	रगणः	गु,
	अथिज	डयति	बन्धो कि	मङ्कशौ	चैः
	।।।	।।।	SS।	S।S	S

(७६) "**म्नौज्रौगास्त्रिदशयति प्रहर्षणीयम्**" । अथवा–"**मनजरगाः प्रहर्षणी गैः**" । **अथवा–"त्र्याशाभि-मनजरगाः प्रहर्षणीयम्** । म. न. ज. र. गु, । SSS. ।।।. ।S।. S।S. S. । इति लक्षणमेतद् ज्ञेयम् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिचरणं क्रमशः मगण-नगण-जगण-रगणाणां तदुत्तरमेकस्य गुरुवर्णस्य च स्थितिर्भवति, तस्य **प्रहर्षणी** नाम कथ्यते । तृतीये दशमे च यतिरत्र जायते । अर्थात्–यत्र मगण, नगण, जगण, रगणाः गुरुवर्णश्च त्रिभिर्दशभिश्च विरामः सा प्रहर्षणी नामकं छन्दः ।

उदाहरणम्–

उत्प्रेङ्खत् त्रिदशधनुश्छलेन वर्षा -
लक्ष्म्योद्यन् मणिरुचिचित्रतोरणस्रक् ।
पञ्चेषोर्भुवनजयोत्सवैकचिह्न -
मावद्धा सपदि मनः प्रहर्षणीयम् ।। छ. ।।

अथवा-

स्वच्छन्दं दलदरविन्द ! ते मरन्दं ,
विन्दन्तो विदधतु गुञ्जितं मिलिन्दाः ।
आमोदानथ हरिदन्तराणि नेतुं ,
नैवाऽन्यो जगति समीरणात् प्रवीणः ।।

[इति पण्डितश्रीजगन्नाथकवेः भामिनीविलासग्रन्थे प्रोक्तम् ।]

प्रहर्षिणी छन्दः	मगणः	नगणः	जगणः	रगणः	गु
	स्वच्छन्दं	दलद	रविन्द	ते मर	न्दम्
	SSS	।।।	।S।	S।S	S

(८०) **"चतुर्ग्रहैरतिरुचिरा नभस्जगाः"** । अथवा **"नभसजगा रुचिरा कथिता"** । न. भ. स. ज. गु. । ।।।. S।।. ।।S. ।S।. S. इति लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः-यत्र प्रतिपादं क्रमशः नगण-भगण-सगण-जगणोत्तरमेको गुरुवर्णो भवति, तस्य **रुचिरा** नाम प्रसिद्धं भवति ।

उदाहरणम्–

समुल्लसद्दशनमयूखचन्द्रिका-
तरङ्गिते तव वदनेन्दुमण्डले ।
सुलोचने कलयति लाञ्छनच्छविः,
घनाञ्जनद्रवरुचिराऽलकावली ॥ छ. ॥

(८१) **"स्यौ स्जौ गः सुदन्तम्"** । स. य. स. ज. गु. । ।।ऽ. ।ऽऽ. ।।ऽ. ।ऽ।. ऽ. लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिचरणं क्रमशः सगण-यगण-सगण-जगणोत्तरमेको गुरुवर्णो भवन्ति, तस्य सुदन्तमिति नाम विज्ञेयम् ।

उदाहरणम्–

त्रिदिवं व्रजद्भिर्दिविषत्पतेः पुरः,
सुभटैर्जवान्निर्दलिता इवार्गलाः ।
करवालघातैस्त्रुटितास्तदा समिद्,
वसुधा सुदन्ताकरिणां चकासिरे ॥

सुदन्ता वृत्तम्	सगणः	यगणः	सगणः	जगणः	गु,
	त्रिदिवं	व्रजद्भिः	दिविषत्	पतेः पु	रः
	।।ऽ	।ऽऽ	।।ऽ	।ऽ।	ऽ

(८२) **"वेदैरन्ध्रैर्म्तौ यसगा मत्तमयूरम्"** । अथवा-**"मत्तयसगा मत्तमयूरम्"** । म. त. य. स. गु. । SSS. SSI. ISS. IIS. S. इति लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः—यत्र क्रमशः प्रतिपादं मगण-तगण-यगण-सगणोत्तरमेको गुरुवर्णस्तस्य **मत्तमयूरं** नाम विज्ञेयम् । चतुर्थे नवमे च यतिरिष्यते ।

उदाहरणम्—

व्यूढोरस्कः सिंहसमाना तत मध्यः ,
पीनस्कन्धो मांसलहस्तायतबाहुः ।
कम्बुग्रीवः स्निग्धशरीरस्तनुलोमाः ,
भुङ्क्ते राज्यं मत्तमयूराकृतिनेत्रः ॥

मत्तमयूरः छन्दः	मगणः	तगणः	यगणः	सगणः	गु ,
	व्यूढोर	स्क सिंह	समाना	ततम	ध्यः
	SSS	SSI	ISS	IIS	S

अथ शक्वरी छन्दोवर्णनम्

(चतुर्दशाक्षरकमिदम्)

(८३) **"म्तौ न्सौ गावक्षग्रहविरतिरसम्बाधा"** । म. त. न. स. गु. । SSS. SSI. III. IIS. SS. इति लक्षणपदमेतत् ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिचरणं क्रमशो मगण-तगण-नगण-सगणोत्तरं गुरुवर्णद्वयं स्यात्, तस्य **असंबाधा** नाम ध्रियते। पञ्चमे नवमे च यतिरत्र जायते।

उदाहरणम्—

भङ्क्त्वा दुर्गाणि द्रुमवनमखिलं छित्वा,
हत्वा तत्सैन्यं करितुरगबलं हृत्वा।
येनासंबाधा स्थितिरजनि विपक्षाणां,
सर्वौर्वीनाथः स जयति नृपति मुञ्जः॥

असंबाधा वृत्तम्	मगणः	तगणः	नगणः	सगणः	गु,	गु,
	भङ्क्त्वा दु	र्गाणि द्रु	मवन	मखिलं	छि	त्वा
	SSS	SSI	III	IIS	S	S

(८४) **"न न र स लघु गैः स्वरैरपराजिता"**।
न. न. र. स. ल. गु.। III. III. SIS. IIS. I. S. लक्षणमिदम्।

सरलार्थः—यत्र प्रतिपादं क्रमशो नगणद्वय रगण-सजगोत्तरं लघुर्गुरुश्च भवति, तस्य **'अपराजिता'** नाम विज्ञेयं। सप्तभिः सप्तभिर्यतिरत्र।

उदाहरणम्–

शशधरवदनं कुशेशयलोचनं ,
शुचिरुचिरुचिरं ललाटतटस्थितम् ।
विशद - करुणयाधिवासितमृद्धयो ,
जिनमनुसरतां भवन्त्यपराजिता ।। छ. ।।

अपराजिता छन्दः	नगणः	नगणः	रगणः	सगणः	ल.	गु.
	शशध	र वद	नं कुशे	शयलो	च	नं
	।।।	।।।	ऽ।ऽ	।।ऽ	।	ऽ

(८५) **"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः"** । अथवा–**"ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः"** । त. भ. ज. ज. ग. ग. । ।।ऽ. ऽ।।. ।ऽ।. ।ऽ।. ऽ. ऽ. । इति लक्षण-पदमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिचरणं क्रमशः तगण-भगण-जगण-जगणोत्तरं गुरुद्वयं स्यात्, तस्य **वसन्ततिलका** नाम सुप्रसिद्धं भवति । अर्थात्–यत्र तगण-भगण-जगण-जगणाः, गुरुद्वयं च स वसन्ततिलकानामकं छन्दो भवति । षष्ठेऽष्टमेचाऽत्र यतिः ।

उदाहरणम्–

आद्यं द्वितीयमपि चेद् गुरु तच्चतुर्थं ,
यत्राष्टमं च दशमान्त्यमुपान्त्यमन्त्यम् ।
कामाङ्कुशाङ्कुशितकामिमतङ्गजेन्द्रे ,
कान्ते वसन्ततिलकां किल तां वदन्ति ॥

[इतिश्रीमद्कविकालिदासविरचिते श्रुतबोधे श्लोकः-३७ ।]

अथवा–

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा,-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपाद-युगं युगादा,-
वालंबनं भवजले पततां जनानाम् ॥ १ ॥

[इतिश्रीमन्मानतुङ्गसूरीश्वरविरचितश्रीभक्तामरस्तोत्रे (स्मरणे) प्रोक्तम् ।]

वसन्त-तिलका छन्दः	तगणः	भगणः	जगणः	जगणः	गु,	गु,
	भक्ताम	रप्रण	त मौलि	मणिप्र	भा	णा
	SSI	SII	ISI	ISI	S	S

अथातिशक्वरी भेदाः

(१५ पञ्चदशाक्षरकाणि सर्वाणि)

(८६) "नी सौ शशिकला"। अथवा–"द्विहतहयलघु रथ गिति शशिकला"। न. न. न. न. स.। ।।।. ।।।. ।।।. ।।।. ।।ऽ. लक्षणपदमिदम्।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशश्चत्वारो नगणास्तदुत्तर-मेकः सगणो भवति, तस्य **शशिकला** नाम प्रसिद्धयति।

अथवा–

पञ्चदशाक्षरायां शक्वर्यां द्विहता द्वाभ्यां गुणिता हयाः सप्तजाताश्चतुर्दश प्रागेव तावन्तो लघवस्तदनु एको गुरुः, इत्यनेन प्रकारेण शशिकला नाम छन्दो भवति।

उदाहरणम्–

अरतिमति हि मम वपुंषि विदधतीं,
तिरयसि यदि नवजलदशशिकलाम्।
स्वयमपि किमिति न कलयसि करुणां,
यदिह विरचयसि कटुरसितमहो ॥ छ. ॥

अथवा–

मलयजतिलकसमुदितशशिकला,
व्रजयुवति लसदलिकगगनगता।
सरसिजनयनहृदयसलिलनिधिं,
व्यतनुत विततरभस परितरलम् ॥

शशिकला छन्दः	नगणः	नगणः	नगणः	नगणः	सगणः
	मलय	जतिल	क समु	दितश	शिकला
	।।।	।।।	।।।	।।।	।।ऽ

(८७) "स्रगिति भवति रसनवकयतिरियम्" । अथवा–"सा स्रक् चैः" । षड्भिर्नवभिर्यतिरत्रजायते, लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशः शशिकला छन्दोवद् वर्णाः भवन्ति, तस्य स्रगपि नाम प्रसिद्धं भवति । अर्थात्–इयं शशिकलाछन्दो यदि रसनवकयतिः षट् नवभिर्यतिस्तदेत्यनया रीत्या **स्रग्** नाम छन्दो भवति ।

उदाहरणम्–

प्रसरति तव सुभग विरहदहने ,
श्रृणु यदजति किमपि कुवलयदृशः ।
सरसिजमपि तपति नवविच किल ,
स्रगपि सपदि जनयति भृशमरतिम् ।।

स्रग् छन्दः	नगणः	नगणः	नगणः	नगणः	सगणः
	प्रसर	ति तव	सुभग	विरह	दहने
	।।।	।।।	।।।	।।।	।।ऽ

(८८) **"वसुमुनियतिरिह मणिगुणनिकरः"** । न. न. न. न. स. । ।।।. ।।।. ।।।. ।।।. ।।S. इति लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः–यत्र क्रमशः प्रतिचरणं पूर्वोक्ते छन्दसि स्रजि यदि सप्तभिरष्टभिश्च यतिर्भवति तदा इदमेव **'मणिगुणनिकर'** इति नाम्ना प्रसिद्ध्यति । अर्थात्–इह अस्यां शशिकलायामष्टसप्तभिर्यतिस्तदेयं मणिगुणनिकरः छन्दः स्यात् ।

उदाहरणम्--

गवेषणीयमत्र ।

(८९) **"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः"** । न. न. म. य. य. । ।।।. ।।।. SSS. ।SS. ।SS. इति लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र क्रमशः प्रतिपादं नगण-नगण-मगण-यगण-यगणानां वर्णा भवन्ति, तस्य **मालिनी** नाम विज्ञेयम् । अर्थात्–यत्र नगण-नगण-मगण-यगण-यगणाः अष्टभिः सप्तभिश्च विरामः सा मालिनी छन्दः । अस्य **नन्दीमुखीत्यपरं** नामापि भरतेन कथितमस्ति ।

उदाहरणम्--

प्रतिमुहुरिह दोलान्दोलन - व्यापृतानां ,
कुवलय - नयनानामाननैरुल्लसद्भिः ।
विमललवणिमाम्भश्चन्द्रिकां प्राक् किरद्भि-
र्नवशशधरमाला मालिनी वामवद् द्यौ ।। छ. ।।

अथवा–

प्रथममगुरुषट्कं विद्यते यत्र कान्ते ,
तदनु च दशमं चेदक्षरं द्वादशान्त्यम् ।
गिरिभिरथ तुरङ्गैर्यत्र कान्ते विरामः ,
सुकविजनमनोज्ञा मालिनी सा प्रसिद्धा ।।

[इति श्रुतबोधे श्लोक-३८ तमे प्रोक्तमिदम् ।]

यथा–

अजितमजितनाथं रागरोषप्रमोहै-
रमितमतिशयौघैः प्रातिहार्यैश्च वर्य्यम् ।
अवितथतमवाचा धर्ममार्गं दिशन्तं ,
त्रिकरणपरिशुद्ध्या नित्यमेवानमामि ।।

[इतिश्रीजयकेसरिसूरिरचितश्रीअजितनाथस्तवने कथितम् ।]

मालिनी छन्दः	नगणः	नगणः	मगणः	यगणः	यगणः
	अजित	मजित	नाथं रा	गरोष	प्रमोहैः
	।।।	।।।	SSS	।SS	।SS

(९०) **"रजरजरास्तूणकं स्यात्"** । र. ज. र. ज. र. । S।S. ।S।. S।S. ।S।. S।S इति लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिपादं क्रमशो रगण-जगण-रगण-जगण-रगणाः वर्तन्ते, तस्य **तूणकं** नामकं छन्दो भवति ।

उदाहरणम्—

स्फीतनव्यगन्धलुब्धषट्पदौघसेविताश् ,
चैत्रमासि पश्य भान्ति चूतमञ्जरीशिखाः ।
ऊर्ध्वदृश्यमानकङ्कपत्रकृष्णपक्षकास् ,
तूणका इवेह वीर मन्मथेन लम्बिताः ।। छ. ।।

तूणक-छन्दः	रगणः	जगणः	रगणः	जगणः	रगणः
	स्फीतन	व्य गन्ध	लुब्ध षट्	पदौघ	सेविताश्
	S।S	।S।	S।S	।S।	S।S

(९१) **"नजभजराः प्रभद्रकम्"** । अथवा—**"भवति**

नजौ भजौ रसहितौ प्रभद्रकम्" । न. ज. भ. ज. र. । ।।।. ।ऽ।. ऽ।।. ।ऽ।. ऽ।ऽ. इति लक्षणपदमेतत् ।

सरलार्थः—यत्र क्रमशः प्रतिपादं नगण-जगण-भगण-जगण-रगणानां वर्णा विलसन्ति, तस्य **प्रभद्रकं** नाम प्रख्यातं भवति । अर्थात्—यत्र नगण-जगणौ भगण-जगणौ रगणसहितौ तदा **प्रभद्रकं** नाम छन्दो भवति । अत्र सप्तमेऽष्टमे च यतिर्जायते ।

उदाहरणम्—

जगति जगत्त्रयोपकृतिकारणोदयो ,
जिनपतिभानुमानुपरमधामतेजसाम् ।
भविक - सरोरुहं गलितमोहनिद्रकं ,
भवति यदीय पादलुठनात् प्रभद्रकम् ।। छ. ।।

अथवा—

भज भज शङ्करं गिरिजया समन्वितम् ,
त्यज भवबन्धनं विरसतावसानकम् ।
उपनिषदां मतं मनसि धेहि सन्ततं ,
गुरुकृपया सदा भवतु ते प्रभद्रकम् ।।

	नगणः	जगणः	भगणः	जगणः	रगणः
प्रभद्रकम् वृत्तम्	जगति	जगत् त्र	योपकृ	तिकार	णोदयो
	।।।	।ऽ।	ऽ।।	।ऽ।	ऽ।ऽ

(६२) **"म्रौ म्यौ यांतौ भवेतां सप्ताष्टकैश्चन्द्रलेखा"** । म. र. म. य. य. । ऽऽऽ. ऽ।ऽ. ऽऽऽ. ।ऽऽ. ।ऽऽ. इति लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः—यत्र क्रमशः प्रतिपादं मगण-यगण-मगण-यगण-यगणानां वर्णाः भवन्ति, तस्य **चन्द्रलेखा** नाम विज्ञेयम् । अत्राऽपि वै सप्तमेऽष्टमे च यतिर्जायते । अर्थात्—यत्र मगण-रगणौ मगण-यगणौ यदि भवेतां विरामश्च सप्तभिरष्टभिरक्षरैर्भवेत् तदा **चन्द्रलेखा** नामकं छन्दः स्यात् ।

उदाहरणम्—

राजन् सत्यं तदेतद् ब्रूमोऽद्भुतं वर्णनं ते,
दोर्दण्डस्यामभिः सस्पर्धां करोतु त्वदीयाम् ।
आच्छिद्याद्यो मुरारेर्वक्षःस्थलात् कौस्तुभं वा,
यः कर्षेच्चन्द्रलेखां शंभोर्जरामाण्डलाद्वा ।।

चन्द्रलेखा छन्दः	मगणः	रगणः	मगणः	यगणः	यगणः
	राजन् स	त्यं तदे	तद् ब्रूमो	द्भुतं व	र्णनंते
	SSS	SIS	SSS	ISS	ISS

अथ १६ षोडशाक्षरपादकं छन्दः प्रदर्श्यते ।

(६३) **"नजभजरैः सदा भवति वाणिनी गयुक्तैः"** । अथवा—**"नजभजरगा वाणिनी नामधेया"** । न. ज. भ. ज. र. ग. । III. ISI. SII. ISI. SIS. S. इति लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिपादं क्रमशो नगण-जगण-भगण-जगण-रगणास्तदुत्तरमेको गुरुवर्णस्तस्य **वाणिनी** प्रसिद्धं भवति । अर्थाद्—नगण-जगण-भगण-जगण-रगणैर्गुरुयुक्तैस्तदा **वाणिनी** नाम छन्दो भवति ।

उदाहरणम्—

अविरलपुष्पबाणललितानि दर्शयन्ती ,
परिमलहारि तामरसवक्त्रमुद्वहन्ती ।
मदकलराजहंस - गमनानि भावयन्ती ,
शरदिह मानसं हरति हन्त वाणिनीव ॥ छ. ॥

वाणिनी छन्दः	नगणः	जगणः	भगणः	जगणः	रगणः	गु
	अविर	ल पुष्प	बाणल	लितानि	दर्शय	न्ती
	।।।	।ऽ।	ऽ।।	।ऽ।	ऽ।ऽ	ऽ

(६४) **"जरौ जरौ जगाविदं वदन्ति पञ्चचामरम्"** ।
ज. र. ल. गु. ज. र. ल. गु. । ।ऽ।. ऽ।ऽ. ।. ऽ. ।ऽ।. ऽ।ऽ. ।. ऽ. अथवा–**"प्रमाणिका पदद्वयं, वदन्ति पञ्चचामरम्"** । इति लक्षणपदमिदम् । अर्थात्–**लघुर्गुरुर्लघुर्गुरुरित्येवं षोडशाक्षर-पर्यन्तं स्यात् तत् पञ्चचामरम्"** ।

सरलार्थः–यस्मिन् प्रतिपादं क्रमशो जगण-रगण-जगण-रगण-जगणोत्तरमेको गुरुवर्णस्तिष्ठति तत् पञ्चचामरं नाम छन्दः कथ्यते । अर्थात्–जगण-रगणौ जगण-रगणौ जगणगुरू च एतैरिदं छन्दः पञ्चचामरं नाम छन्दोविदः वदन्तीति । द्वाभ्यां द्वाभ्यां यतिरत्र जायते ।

उदाहरणम्–

त्वदीय पादपङ्कजे निधाय भक्तिमुज्ज्वलां ,
मनुष्यकीटका वयं विदध्महे किमद्भुतम् ।
यदीय जन्मनो महोत्सवं तथा प्रचक्रिरे ,
जिनेन्द्रसप्तविंशतिश्च पञ्चचामराधिपाः ।। छ. ।।

अथवा–

नमामि नेमितीर्थपं सदा सुशीलशालिनं ,
समस्तसूरिचक्रचक्रवर्तिताविराजिनम् ।
प्रदीपदीपमालिकाधिकप्रकाशशालिकां ,
विधाय विश्वनालिकां दधानमात्मसम्भवम् ।। १ ।।

[इत्यस्मत्प्रगुरुदेवाचार्य श्रीमद्विजयलावण्यसूरीश्वर विरचित श्रीदेवगुर्वष्टके कथितम् ।]

पञ्च	जगणः	रगणः	ल.	गु	जगणः	रगणः	ल.	गु,
चामर	नमामि	नेमिती	र्थ	प	सदासु	शीलशा	लि	नं
वृत्तम्	।S।	S।S	।	S	।S।	S।S	।	S

अथ सप्तदशाक्षरकपादकं छन्दः ।

(६५) **"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी"** ।
अथवा–**"यमनसभलगाः शिखरिणी"** । य. म. न. स. भ. ल. गु. । ।SS. SSS. ।।।. ।।S. S।।. ।. S. इति लक्षण-पदमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिचरणं क्रमशः यगण मगण नगण सगण भगणोत्तरं लघुगुरुवर्णौ भवतस्तस्य **शिखरिणी**

नाम प्रसिद्धमस्ति। अर्थात्–यत्र रसैः षड्भिस्ततो रुद्रैरेकादशभिश्छिन्ना विरतिर्यत्र च यगण मगण नगण सगण भगणलघवो गुरुश्च सा **शिखरिणी** नाम छन्दः स्यात्। अत्र षष्ठे एकादशे च यतिर्जायते।

उदाहरणम्–

हरन् सर्वाम्भोज श्रियमविरतं सिन्धुपतिना,
कृतार्थस्तत्वानो निशि तमसि विद्योतमसमम्।
सुधांशुस्तद्वंशे त्वमिव जयसिंहक्षितिपते-
रुक्षा पूर्णः पश्योदय शिखरिणी ह्याभ्युदयते॥

अथवा–

यदा पूर्वो ह्रस्वः कमलनयने षष्ठकपरा-
स्ततो वर्णाः पञ्च प्रकृतिसुकुमारांगि लघवः।
त्रयोऽन्ये चोपान्त्याः सुतनु जघनाभोगसुभगे,
रसै रुद्रैर्यस्यां भवति विरतिः सा शिखरिणी॥

[इति श्रुतबोधे श्लोक ४०]

यथा–

तपस्तप्त्वा क्षिप्त्वा कलुषकटुकर्माण्यधिगतो,
यदीयच्छायायां त्वमसमशमः केवलविदम्।
तरुर्धर्मक्षेत्रे स खलु विहितः पञ्च गुणवा-
नपि स्थाने देवैः सपदि भवतो द्वादशगुणः॥

[इतिश्रीजयकेसरिसूरिरचित श्रीधर्मनाथजिनस्तवने प्रोक्तमिदम्]

शिखरिणी छन्दः	यगणः	मगण	नगणः	सगणः	भगणः	ल.	गु.
	तपस्त	प्त्वाक्षिप्त्वा	कलुष	कटुक	मण्यधि	ग	तो
	ISS	SSS	III	IIS	SII	I	S

(९६) **"रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा"** । न. स. म. र. स. ल. ग. । III. IIS. SSS. SIS. IIS. I. S. इति लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः—यस्मिन् प्रतिचरणे क्रमशो नगण सगण मगण रगण सगणोत्तरमेको लघु-गुरुरस्ति, तस्य **हारिणी** नाम हरिणी वा क्रियते । अर्थात्—रसैः षड्भिः वेदैश्चतुर्भिरश्वैः सप्तभिश्च विरामः स्यात् तदा सा **हरिणी** स्मृता । चर्चैर्विरामोऽत्र । वृषभललितमित्येके ।

उदाहरणम्—

कथय किमियं लक्ष्मच्छाया शुचेस्तु भवेत् कथं ,
तव हिमरुचे यद् वोत्सङ्गे कृतः कृपया ध्रुवम् ।
नभसि रभसादवद्धाटोप प्रधावितलुब्धकः ,
क्षुभितहरिणीगर्भाद् भ्रष्टः कुरङ्गक एव हि ॥छ.॥

अथवा–

नसभ रसनाः काले भोगाश्चलं धनयौवनं,
कुरुत सुकृतं यावन्नेयं तनुः प्रविशीर्यते ।
किमपि कलना कालस्येयं प्रधावति सत्वरा,
तरुण हरिणी संत्रस्तेव प्लवप्रविसारिणी ॥

अथवा–

सुमुखि लघवः पंच प्राच्यास्ततो दशमान्तिकं,
तदनु ललितालापे वर्णौ यदि त्रिचतुर्दशौ ।
प्रभवति पुनर्यत्रोपान्त्यः स्फुरत्करकंकणे,
यतिरपि रसैर्वेदैरश्वैः स्मृता हरिणीति सा ॥

[इति श्रुतबोधे श्लोक-३९]

हरिणी	सुमुखि	लघवः	पंच प्रा	च्यास्ततो	दशमा	न्ति	कं
छन्दः	।।।	।।ऽ	ऽऽऽ	ऽ।ऽ	।।ऽ	।	ऽ

(९७) **"जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः"** ।
ज. स. ज. स. य. ल. ग. । ।ऽ।. ।।ऽ. ।ऽ।. ।।ऽ. ।ऽऽ. ।. ऽ.
इति पृथ्वीलक्षणमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशः जगणसगणौ जगण-

सगण यगण लघवो गुरुश्च स्याद् सा **पृथ्वी** नाम छन्दः । अर्थाद् यस्मिन् छन्दसि जगण-सगण-जगण-सगण-यगणाः लघुवर्णः गुरुवर्णश्च अष्टभिर्नवभिश्च विश्रामः तत् पृथ्वीनामवृत्तं भवति ।

उदाहरणम्–

द्वितीयमलिकुंतले यदि षडष्टमं द्वादशं,
चतुर्दशमथ प्रिये गुरुगभीरनाभिहृदे ।
सपंचदशमन्तिकं तदनु यत्र कान्ते यति-
र्गिरीन्द्रफणिभृत्कुलेर्भवति सुभ्रु पृथ्वी हि सा ।।
[इति श्रुतबोधे श्लोक-४१]

अथवा–

स्तुतिं तव चिकीर्षता जडधियाऽपि यद्वल्गितं,
मया महिममेदिनीवलयितप्रभाम्बुधे ।
न तत्र किल विस्मयः किमपि कारणं न स्मय-
स्तवाऽतिशय एव मां मुखरयत्यखण्डोदयः ।।

[इतिश्रीजयकेसरिसूरिरचित श्रीकुन्थुनाथ-जिनस्तवने प्रोक्तमिदम् ।]

पृथ्वी छन्दः	जगणः	सगणः	जगणः	सगणः	यगणः	ल.	गु.
	स्तुतित	वचिकी	र्षताज	डधिया	पियद्व	लिग	तं
	ISI	IIS	ISI	IIS	ISS	I	S

(६८) **"मन्दाक्रान्ता - ऽम्बुधिरसनगै - र्मोभनौगौय युग्मम्"** । अथवा–**"मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौं न तौ ताद् गुरु चेत्"** । म. भ. न. गु. गु. य. य. । SSS. SII. III. S. S. ISS. ISS. इति लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशः मगण भगण नगण तगण तगणोत्तरं गुरुद्वयं तिष्ठति, तस्य **मन्दाक्रान्ता** नाम प्रख्यातं भवति । अर्थात्–यस्यां मगण-भगण-नगणाः गुरुद्वयं ततश्च यगणद्वयं चतुर्भिः षड्भिः सप्तभिश्च विश्रान्तिः सा मन्दाक्रान्ता । [४-६-७ यतिः कर्त्तव्या]

उदाहरणम्–

जन्मस्थाने स चरमजिनः स्वर्णकुम्भौघारा,
सारं सोढा कथमिति पुरा वज्रिणा शङ्कितेन ।
दृष्टः पश्चाज्जयति चरणाङ्गुष्ठ पर्यन्तलीना,
मन्दाक्रान्ताऽमरगिरिशिरः कम्पितो विस्मितेन ।छ.।

अथवा–

चत्वारः प्राक् सुतनु गुरवो द्वादशैकादशौ चे-
न्मुग्धे वर्णौ तदनुकुमुदामोदिनि द्वादशान्त्यौ ।
तद्वच्चांत्यौ युगरसहयैर्यत्र कान्ते विरामो,
मन्दाक्रान्तां प्रवरकवयस्तन्वितां संगिरंते ॥

[इति श्रुतबोधे श्लोक-४२]

यथा–

बोधागाधं सुपदपदवी नीरपूराभिरामं,
जीवाऽहिंसा विरललहरी सङ्गमागाहदेहम् ।
चूलावेलं गुरुगममणी सङ्कुलं दूरपारं,
सारं वीरा गमजलनिधिं सादरं साधु सेवे ॥

[याकिनीधर्मसूनु पू. आ. श्रीहरिभद्रसूरीश्वरविरचित श्रीसंसारदावाऽनलस्तुतौ श्लोक-३]

धृतिभेदाः –२६२१४४

अथाष्टादश (१८) वर्णपादकं छन्दः ।

(६६) **"मन्दाक्रान्ता, नयुगलजठरा, कीर्त्तिता चित्रलेखा"** म. गु. न. न. गु. गु. य. य. । SSS. S. ।।।. ।।।. S. S. ।SS. ।SS. इति लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः—मन्दाक्रान्तासदृशमिदं वृत्तं किन्त्वयमेव विशेषः, अत्र छन्दसि मध्ये नगणद्वयम् अर्थात् मन्दाक्रान्तायां मध्ये पञ्चलघवो वर्णा आगच्छन्ति अस्यां च षट् इति ज्ञेयाः ।

उदाहरणम्—

शङ्केऽमुष्मिञ्जगति मृगदृशां साररूपं यदासी-
दाकृष्येदं व्रजयुवतिसभा वेधसा सा व्यधायि ।
नैतादृक् चेत् कथमुदधिसुता-मन्तरेणाच्युतस्य,
प्रीतं तस्यां नयनयुगलं चित्रलेखाद्भुतायाम् ।। १ ।।

चित्र-लेखा छन्दः	मगणः	गु.	नगणः	नगणः	गु.	गु.	यगणः	यगणः
	शङ्केऽमु	ष्मि	ञ्जगति	मृगदृ	शां	सा	ररूपं	यदासी
	SSS	S	III	III	S	S	ISS	ISS

अतिधृतिभेदाः—

एकोनविंशतिवर्णात्मकमेतत्—

(१००) **"सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्"** । म. स. ज. स. त. त. गु. । SSS. IIS. ISI. IIS. SSI. SSI. S. इति लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशो मगण-सगण-जगण-सगण-तगण-तगणास्तत एको गुरुवर्णश्च स्यात् तदा **शार्दूलविक्रीडितं** नाम कार्यम् । १२-७ विरामः । अर्थात्–यत्र मगण-सगण-जगण-सगण-तगण-तगणाः गुरु-वर्णश्च द्वादशभिः सप्तभिश्च विरामः तत् शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

उदाहरणम्–

क्ष्माभृत्पुङ्गवकोशकन्दरमुखान्निर्गत्य ते सङ्गर-
क्रीडासून्मदवैरिवारणघटा कुम्भस्थलीपाटयन् ।
दंष्ट्रालो नवलग्नमौक्तिकमणिस्तोमैरसृग् लेखया,
जिह्वालः करवाल एष तनुते शार्दूलविक्रीडितम् ।। छ. ।।

अथवा–

आद्याश्चेद् गुरवस्त्रयः प्रियतमे षष्ठस्तथा चाष्टमो-
नन्वेकादशतस्त्रयस्तदनुचेदष्टादशाद्यौ ततः ।
मार्तण्डैर्मुनिभिश्च यत्र विरतिः पूर्णेन्दुबिम्बानने,
तद् वृत्तं प्रवदन्ति काव्यरसिकाः शार्दूलविक्रीडितम् ।।
[इति श्रुतबोधे श्लोक–४३]

यथा–

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिताः,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय नित्यं नमः ।
वीरात् तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्रीधृतिकीर्त्तिकान्तिनिचयः श्रीवीर ! भद्रं दिश ।।

[कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्यविरचित श्रीसकलार्हत् चैत्यवन्दने श्लोक–२६ प्रोक्तमिति]

शार्दूल विक्रीडितं वृत्तम्	मगण:	सगण:	जगण:	सगण:	तगण:	तगण:	गु.
	वीर: स	र्वसुरा	सुरेन्द्र	महितो	वीरं बु	धासं श्रि	ता:
	SSS	IIS	ISI	IIS	SSI	SSI	S

(१०१) **"रसर्त्वश्वैर्यमौ न्सौ ररगुरुयुता मेघ-विस्फूर्जिता स्यात्"** । य. म. न. स. र. र. गु. । ISS. SSS. III. IIS. SIS. SIS. S. इति लक्षणमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र क्रमशः प्रतिपादमेतादृशगणविन्यासेन स्थितिस्तस्य **मेघविस्फूर्जितं** नाम प्रसिद्धं भवति । यमनसररगाश्चक्रैर्विरामः । अर्थात्–रसैः षड्भिः ऋतुभिः षड्भिः अश्वैः सप्तभिः कृतविरामा ।

उदाहरणम्–

निरुन्धानस्तापं जगति कलयं चण्डकोदण्डदण्डं,
पदं व्यातन्वानः सततमखिलक्षतभृतां चोपरिष्टात् ।
निकामं दुर्धर्षा दिशि दिशि समुल्लासयन् वाहिनीश्च,
त्वमुच्चैश्चोलुक्येश्वर घटयसे मेघविस्फूर्जितमूनि ॥

मेघवि-	यगणः	मगणः	नगणः	सगणः	रगणः	रगणः	गु.
स्फूर्जितं	निरुन्धा	नस्त.पं	जगति	कलयं	चण्डको	दण्डद	ण्डं
छन्दः	ISS	SSS	III	IIS	SIS	SIS	S

अथ विंशत्यक्षरपादकं छन्दः

(१०२) "त्रिरजौ गलौ भवेदिहेदृशेन लक्षणेन वृत्तनाम छन्दः" । "गुरुलघुदशवारानावृत्तैर्वृत्तं नाम वृत्तम्" । र. ज. र. ज. र. ज. गु. ल. । SIS. ISI. SIS. ISI. SIS. ISI. S. I. इति लक्षणपदमेतत् ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिपादं क्रमशः त्रिस्त्रीन् वारान् रगण-जगणौ ततो गुरु लघू ईदृशेन लक्षणेन **वृत्तनाम** छन्दो भवेत् ।

उदाहरणम्—

प्रीणिताखिलार्थिदानमूर्जितारिजिष्णु पौरुषं महर्षि ,
चित्रकृञ्जितेन्द्रियत्वमेवमद्भुतान् गुणान् दधन् नरेन्द्र ।
रामपार्थधुन्धुमारमुख्यपूर्वभूमिपाल वृत्तमत्र ,
सत्यतां चिराय नीतवानसित्त्वमुच्चकैश्चुलुक्यचन्द्र ।।छ.।।

अथवा–

जन्तुमात्रदुःखकारिकर्मनिर्मितं भवत्यनर्थहेतु ,
तेन सर्वमान्यतुल्यमीक्ष्यमाण उत्तमं सुखं लभस्व ।
विद्धि बुद्धिपूर्वकं ममोपदेश वाक्यमेतदारणेन ,
वृत्तमेतदद्भुतं महाकुलप्रसूतजन्मनां हिताय ॥

वृत्तं	रगणः	जगणः	रगणः	जगणः	गणः	जगणः	गु.	ल.
नाम	जन्तुमा	त्रदुःख	कारिक	र्मनिर्मि	तं भव	त्यनर्थ	हे	तु
वृत्तम्	SIS	ISI	SIS	ISI	SIS	ISI	S	I

एकविंशत्यक्षरपादकम्

(१०३) **"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम्"** । म. र. भ. न. य. य. य. । SSS. SIS. SII. III. ISS. ISS. ISS. इति लक्षणपदमेतत् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशो मगण-रगण-भगण-नगण-यगण-यगण-यगणाः भवन्ति, तस्य **स्रग्धरा** नाम प्रसिद्धं भवति । सप्तमे चतुर्दशे च वर्णे यतिरत्र कर्त्तव्या । अर्थात्–यस्यां मगण-रगण-भगण-नगण-यगण-यगण-यगणाः सप्तभिः सप्तभिः वर्णैः विरामः सा स्रग्धरा स्यात् ।

उदाहरणम्–

आवासः पर्णशाला वपुषि च वसनं नूतना त्वक् तरूणां,
पाणावाषाढयष्टिः शिरसि च चिकुरैर्नव्यगुम्फो जटानाम् ।
कर्णोऽक्ष स्रग्धरायाः परिवृढा विपिने त्वद् भयात् संप्रतीत्य,
वृत्ति द्वित्रैरहोभिस्त्वदरिनृपजनैः शिक्षितास्तापसानाम् ।।छ।।

अथवा–

चत्वारो यत्र वर्णाः प्रथममलघवः षष्ठकः सप्तमोऽपि,
द्वौ तद्वत् षोडशाद्यौ मृगमदमुदिते षोडशान्त्यौ तथान्त्यौ
रम्भास्तम्भोरुकान्ते मुनिमुनिमुनिभिर्दृश्यते चेद् विरामो,
बाले वन्द्यैः कवीन्द्रैः सुतनुः निगदिता स्रग्धरा सा प्रसिद्धा ।।

[इति कविकालिदासकृतश्रुतबोधनामकग्रन्थे श्लोक ४४ प्रोक्तम् ।]

यथा–

आमूलालोलधूली बहुलपरिमलालीढलोलालिमाला-
झंकारारावसारामलदलकमलागारभूमिनिवासे ! ।
छायासंभारसारे ! वरकमलकरे ? तारहाराभिरामे !,
वाणीसंदोहदेहे ! भवविरहवरं देहि मे देवि ! सारम् ।।

[संसारदावानलस्तुतौ श्लोक-४]

स्रग्धरा छन्दः	मगणः	रगणः	भगणः	नगणः	यगणः	यगणः	यगणः
	आमूला	लोलधू	ली बहु	लपरि	मलाली	ढलोला	लि मा ला
	SSS	SIS	SII	III	ISS	ISS	ISS

आकृतिभेदाः—४१९४३०४

अथ द्वाविंशत्यक्षरपादकमाह—

(१०४) **"भ्रौ नरना रनावथगुरुर्दिगर्कविरतं हि भद्रकमिदम्"** । भ. र. न. र. न. र. न. गु. । SII. SIS. III. SIS. III. SIS. III. S. इति लक्षणमेतत् ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिपादं क्रमशो भगण-रगण-नगण-रगण-नगण-रगण-नगणास्तवदुत्तरं गुरुरेको वर्णो भवति, तस्य भद्रकं नाम जायते । दशभिरक्षरैर्यतिरत्र क्रियते । अर्थात्—आकृतिजातौ भगण-रगणौ ततो नगण-रगण-नगणास्ततो रगण-नगणौ अथ गुरुः । इदं **भद्रकं** नाम छन्दः । किंभूतं दिर्गकविरमं दशभिर्द्वादशभिश्च विरामो यत्र तत् । अत्र हि पादपूरणे इति ।

उदाहरणम्—

भद्रकगीतिभिः सकृदपि स्तुवन्ति भव ये भवन्तमनघं,
भक्तिपरावनम्रशिरसः प्रणम्य तव पादयोः सुकृतिनः ।
ते परमेश्वरस्य पदवीमवाप्य सुखमाप्नुवन्ति विपुलं,
मर्त्यभुवं स्पृशन्ति न पुनर्मनोहरमुराङ्गनावृताः ॥

भद्रक-	भगरणः	रगरणः	?गरणः	रगरणः	नगरणः	रगणः	नगरणः	गु,
छन्दः	भद्रक	गीतिभिः	?कृद	पिस्तुव	न्ति भव	ये भव	न्तमन	घं
	SII	SIS	III	SIS	III	SIS	III	S

द्वाविंशत्यक्षरपादकं छन्दः

(१०५) **"सप्त भकारयुक्तैक गुरुर्गदितेयमुदारतरा मदिरा"** । भ. भ. भ. भ. भ. भ. भ. गु. । SII. SII. SII. SII. SII. SII. SII. S. इति लक्षरणपदमिदम् ।

सरलार्थः—यत्र प्रतिपादं क्रमशः सप्त भगरणास्तदुत्तरमेको गुरुवर्णश्च भवेत्, तस्य **मदिरा** नाम प्रसिद्धं भवति ।

उदाहरणम्—

माधवमासि विकस्वरकेसरपुष्पलसन् मदिरामुदितै.,
भृङ्गकुलैरुपगीतवने वनमालिनमालि ! कलानिलयम् ।
कुञ्जगृहोदरपल्लवकल्पिततल्पमनल्पमनोजरसं ,
तं भज माधविका मृदु नर्तन यामुनवातकृतापगमा ॥

अथवा–

ह्रीविनियन्त्रणविघ्नमया कुरुतेऽभिनवावतरद्वयसां,
प्रौढि पुरन्धिजनस्य तथा तिरयत्यपराधपदं सहसा।
कोपपदेन च गोत्रपरिस्खलितं न चकारयते तदसौ,
कामसखीमदिरेह स तर्षमभाणि चिरं किल कामजनैः ॥छ.॥

मदिरा छन्दः	भगण	भगणः	भगणः	भगणः	भगणः	भगणः	भगणः	गु,
	माधव	मासिवि	कस्वर	केसर	पुष्पल	सन्मदि	रामुदि	तै
	SII	SII	SII	SII	SII	SII	SII	S

त्रयोविंशत्यक्षरां जातिं वर्णयति

"विकृतौ न्जौ भ्जौ भ्जौ भ्लौ गोऽश्वललितं टैः" । अथवा–विकृतिः । **"यदिह नजौ भजौ भजभलगास्तदश्वललितहरार्कयति तत्"** । न. ज. भ. ज. भ. ज. भ. ल. गु. । III. ISI. SII. ISI. SII. ISI. SII. ल. गु. । इति लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशो नगण-जगण-भगण-जगण-भगण-जगण-भगणानां वर्णास्ततो लघुरेको गुरुश्चैकस्तस्याश्वललितं नाम प्रख्यातं भवति । दशभिरक्षरैर्यति-

श्व कर्त्तव्या । अर्थात्–यदिह शास्त्रे नगण-जगणौ भगण-जगण-भगण-जगण-भगण-लघुगुरवश्च स्युस्तत् **अश्वललितं** नाम छन्दः । किंभूतं तत् हरार्कयति हरैरेकादशभिरर्कै द्वादशभिर्यतिर्विरामो यत्र तत् ।

उदाहरणम्–

तिरय महान्धकूपमसमान्धकार भरदुर्विलोकमतुलं,
निपतित गाढमोहपटलान्धजन्तुविविध प्रलाप तुमुलम् ।
प्रवचनचक्षुषे क्षत इमं चिराय तनुभृत् तथापि वलवच्,
चपलतरेन्द्रियाश्वललितैर्विकृष्ट इह तत् क्षणान् निवजति।।

अस्मिन् छन्दसि दशमो भगणोऽस्माभिर्न्यस्तः। अत्र सप्तमभगणस्थानेऽपि यतिर्भवति। तत् स्थाने केचिज्जगण-मिच्छन्तीति ज्ञेयम् ।।

अश्व	नगणः	जगणः	भगणः	जगणः	भगणः	जगणः	भगण	ल,	गु,
ललितं	तिरय	महान्ध	कूपम	समान्ध	कारभ	रदुर्वि	लोकम	तु	लं
छन्दः	।।।	।ऽ।	ऽ।।	।ऽ।	ऽ।।	।ऽ।	ऽ।।	।	ऽ

अथ चतुर्विंशत्यक्षरपादकं छन्दः

(१०६) "संकृतौ म्तौ न्सौ भौ न्यौ तन्वी ठैः" ।

अथवा—"**भूतमुनीनैर्यतिरिह भतनाः स्भौ भनयाश्च यदि भवति तन्वी**"। भ. त. न. स. भ. भ. न. याः ठैः द्वादशभिर्यतिः। SII. SSI. III. IIS. SII. SII. III. ISS इति लक्षणमिदम्।

सरलार्थः--यत्र प्रतिपादं क्रमशः उपरितननिर्दिष्टगणानां वर्णा भवन्ति, तथा पंच-सप्त-द्वादशभिरक्षरैर्यतिस्तिष्ठति तस्य **तन्वी** नाम विज्ञेयम्। **अर्थात्**—अथ संकृतिर्जातिः। इह छन्दजातौ भतनाः सभौ भनयाश्च एते गणा यदि भवेयुः तदा तन्वी नाम छन्दो भवति। अत्र पञ्च-सप्त-द्वादशभिः यतिः कार्या।

उदाहरणम्—

दन्तमयूखाःशशधररुचयो वागमृतं रतिरमणधनुभ्रू ट्,
लोचनलक्ष्मीस्तुलयति कमलं नूतनविद्रुमसुहृदधरश्च।
चम्पकगर्भप्रतिकृति च वपुर्हंसगतेरनुहरति च पातं,
वच्मि विशेषं कमपरमथवा रम्यमहो किमिव हि नहि तन्वाः

तन्वी छन्दः	भगणः	तगणः	नगणः	सगण	भगणः	भगणः	नगणः	यगणः
	दन्तम	यूखाः श	शधर	रुचयो	वागमृ	तं रति	रमण	धनुभ्रू ट्
	SII	SSI	III	IIS	SII	SII	III	ISS

पञ्चविंशत्यक्षरायाभिकृतिजातिं वर्णयते ।

"अभिकृतौ भ्म स्भ नी गाः क्रौञ्चपदा ङ ङ जैः" । **अथवा-"क्रौञ्चपदा भ्मौ स्भौ नननान्गाविषु शखसुमुनि-विरतिरिह भवेत्"** । भ. म. स. भ. न. न. न. न. गु. । SII. SSS. IIS. SII. III. III. III. III. S. इतिलक्षण-पदमेतत् ।

सरलार्थः-यत्र प्रतिपादं क्रमशो भगण-मगण-सगण-भगणोत्तरं नगणचतुष्टयं गुरुश्चैको भवति, तस्य **क्रौञ्चपदा** नाम ध्रियते । पञ्चभिः पञ्चभिरष्टभिश्च यतिरत्र जायते । अर्थात्-इह अभिकृति जातौ चेद् यदि भगण-मगणौ-सगण-भगणौ चत्वारो नगणा एको गुरुश्च इषुभिः शरैः पञ्चभिः वसुभिरष्टभिर्मुनिभिः सप्तभिश्च विरतिः स्यात् तदा **क्रौञ्चपदा** नाम छन्दो भवेत् इति ।

उदाहरणम्-

प्रोजम्म्यपुरारित्वद्भययोगान् नृपवर भवदरिरतिशयविधुरो,
दूरमरण्यं प्राप्य कलत्रैः सह समजनि गतिरयवशतृषितः ।
सारसनादात् सस्वयमादौ प्रसरति कियदपिभुवनमथ सहसा,
प्रेक्ष्य चकार क्रौञ्चपदाङ्कां ध्रुवमिहमरिदिति निगदतिदयिता ।।

क्रौञ्च पदा छन्दः	भगणः	मगणः	सगणः	भगणः	नगणः	नगण	नगण	नगणः	गु,
	प्रोज्जृम्भयपू	रारित्वद	मयशो	राजन्नृप	वरभ	वदरि	गतिश	रविधु	रो
	SII	SSS	IIS	SII	III	III	III	III	S

अथ षड्विंशत्यक्षरामुत्कृतिजातिवर्णनम् ।

(१०८) **"उत्कृतौ मौ तो निरसलगा भुजङ्गविजृम्भितं जटैः"** । अथवा–**"वस्वीशाश्वच्छेदोपेतं ममतनयुगनरसलगैर्भुजङ्गविजृम्भितम्"** । म. म. त. न. न. न. र. स. ल. घु. । SSS. SSS. SSI. III. III. III. SIS. IIS. I. S. इति लक्षणपदमिदम् ।

सरलार्थः–यत्र प्रतिपादं क्रमशो मगण-मगण-तगण-नगण-नगण-नगण-रगण-सगणास्तदुत्तरं लघुर्गुरुश्च भवतस्तस्य **भुजङ्गविजृम्भितं** नाम प्रख्यातं भवति । अत्र अष्टैकादशसप्तभिश्च यतिः पठनीया । अर्थात्–उत्कृतिजातौ ममतगणास्ततो नयुगं नगणयुगलं ततो नरसगणलघुगुरवः एतै**र्भुजङ्गविजृम्भितं** नाम छन्दो भवति । कीदृशं तत् वस्वी शाश्वच्छेदोपेतमष्टैकादशसप्तभिश्छेदो विरामस्तेनोपेतं युक्तमिति ।

उदाहरणम्—

क्वापि स्वैरं क्रूर - क्रीडन् ,

महिषशतमचकितरतं कुरङ्गकुलं क्वचित् ,

क्वापि क्रीडा - व्यग्र - क्रोडं ,

क्वचिदपि मदजडविहरन् मतंगजसंकुलम् ।

सिंह - क्ष्वेडा - रौद्रं क्वापि ,

क्वचिदपि विषविषममहाभुजङ्गविजृम्भितं ,

श्री - चौलुक्य - क्षोणीनाथ ,

स्फुटमजनि भवदरि महीभुजामधुना पुरम् ।।

भुजंग	मगण:	मगण	तगण:	नगण:	नगण	नगण:	रगण:	सगण:	ल,	गु,
विजृम्भितं	क्वापि स्वै	रंक्रू	क्रीडन्म	हिषश	तमच	कितर	तंकुरं	गकुलं	क्व	चित्
छन्द:	SSS	SSS	SSI	III	III	III	SIS	IIS	I	S

अतः परं सप्तविंशत्यक्षरमारभ्य नानाविधानि दण्डकवृत्तानि

अथ चण्डवृष्टचादिकदण्डकानाह—

"यदिह नयुगलं ततः सप्तरेफास्तदा चण्डवृष्टिप्रपातो भवेद् दण्डकः" ।। १ ।।

यदि इह दण्डकजातौ आदौ नगणयुग्मं ततः सप्तरेफाः सप्त रगणास्तदा **चण्डवृष्टिप्रपातो** नाम दण्डको भवेत् ॥ १ ॥

"प्रतिचरणविवृद्धरेफाः स्युरर्णार्णव-व्यालजीमूत-लीलाकरोद्दामशंखादयः" ॥ २ ॥

अत्र प्रतिपादविवृद्धरेफा इति । प्रत्येकदण्डकं प्रतिपादे एकैकरगणवृद्धिः क्रियते तदा अमूनि नामानि दण्डकानां पृथक् स्युः ।

अत्र तु द्वौ नगणौ ततः प्रत्येक पादे (चरणे) अष्टौ रगणास्तदा **अर्ण** नाम दण्डकं स्यात् । एवं प्रतिदण्डक-वृद्धौ नवभिः **'अर्णव'** नाम दण्डकं स्यात् । दशभी रगणैः **'व्याल'** नाम दण्डकं स्यात् । एकादशभी रगणैः **'जीमूत'** नाम दण्डकं स्यात् । द्वादशभी रगणैः **'लीलाकर'** नाम दण्डकं स्यात् । त्रयोदशभी रगणैः **'उद्दाम'** नाम दण्डकं स्यात् । तथा प्रत्येकचरणे अर्थात् पादे-पादे आदौ द्वौ नगणौ ततः चतुर्दशरगणाः तदा **शङ्खो** नाम दण्डको भवतीति । 'शङ्खादयः' इत्यत्र आदिशब्दात् ययगगनस-मुद्रादयोऽपि शिष्टकृतनामानो गृह्यन्ते रगणवृद्धिरपि कर्त्तव्येति । तथा नगणद्वयादुत्तरैरग्रेतनैः सप्तभिर्यैर्यगणैः

पण्डितैः **प्रचितकसमभिधो** नाम दण्डकः कथितः । तथाहि–
"प्रचितकसमभिधो धीरधीभिः स्मृतो दण्डको नद्वयादुत्तरैः सप्तभिर्यैः" । इति दण्डकाः ।।

विशेषजिज्ञासुना छन्दोऽनुशासन - छन्दोमञ्जरी-वृत्तरत्नाकर-श्रुतबोधादयः छन्दोग्रन्थाः विलोकनीयाः इति ।

अथात्रापि ग्रन्थादौ कविना प्रायः शुभफलत्वात् शुभ-गणः संयोज्यः । तस्माद् नेतरो विपरीतत्वादिति । तथा च तत् स्वरूपनिदर्शकः श्लोकः–

मो भूमिस्त्रिगुरुः श्रियं दिशति यो वृद्धिं जलं चादिलो,
रोऽग्निर्मध्यलघुर्विनाशमनिलो देशाटनं सोऽन्त्यगः ।
तो व्योमान्तलघुर्धनापहरणं जोऽर्को रुजं मध्यगो,
भश्चन्द्रो यश उज्ज्वलं मुखगुरु-र्नो नाक आयुस्त्रिलः ।।१।।

इदं च फलं ग्रन्थनेतुः कर्त्तुः पठितुर्वा यथायोग्यं भवति ।।

अथ गणदेवतादीनां यन्त्रम्

गणनाम	मगणः	यगणः	रगणः	सगणः	तगणः	जगणः	भगणः	नगणः
स्वरूपम्	SSS	ISS	SIS	IIS	SSI	ISI	SII	III
देवता	पृथ्वी	जलम्	अग्निः	वायुः	आकाशः	सूर्यः	चन्द्रः	नाकः
फलम्	श्रीः	वृद्धिः	विनाशः	भ्रमणम्	धननाशः	रोगः	सुयशः	आयुः

अथवा वर्णानाश्रित्याऽपि फलश्रुतिः । यथा–

अवर्णात् संपत्ति-र्भवति मुदिवर्णाद्धनशता-
न्युवर्णादिख्यातिः सरभसमृवर्णाद्धिरहितात् ।
तथा ह्यचः सौख्यं ङञणरहितादक्षरगणात् ,
पदादौ विन्यासाद्भरबहलहाहाविरहितात् ॥ १ ॥

अत्राऽपि अपवादो वर्त्तते । तथाहि–

देवतावाचकाः शब्दाः ,
ये च भद्रादिवाचकाः ।
ते सर्वे नैव निन्द्याः स्यु-
र्लिपितो गणतोऽपि वा ॥ १ ॥

प्र...श...स्तिः

प्रख्याते भारते देशे, राजस्थाने हि प्रान्तके ।
मरुधरे प्रदेशे वै, सिरोहीमण्डलान्तके ।। १ ।।

जोराभिधाख्यभूभागे, जावाले नगरे वरे ।
जैनोपाश्रय-सुस्थाने, वर्षा-स्थितिं प्रकुर्वता ।। २ ।।

श्रीवृषभजिनेन्द्रस्याऽनुभावात् सद्गुरोरपि ।
श्रीछन्दोरत्नमालाख्यो, ग्रन्थोऽयं रचितस्तदा ।। ३ ।।

वर्षे नेत्रानलाकाशा-क्षिप्रमिते हि आश्विनी-
पूर्णिमायां सुशीलाऽख्य-सूरिणा पूर्णतामितः ।। ४ ।।

यावद् विश्वे स्थिताः मेरु-पुष्पदन्तादयोऽपि वै ।
तावद् ग्रन्थोऽप्ययं भूयात्, वाच्यमानः शुभं सताम् ।। ५ ।।

।। इतिश्रीशासनसम्राट् - सूरिचक्रचक्रवर्त्ति - तपोगच्छाधिपति - भारतीयभव्यविभूति-अखण्डब्रह्मतेजोमूर्ति-चिरन्तन-युगप्रधानकल्प - सर्वतन्त्रस्वतन्त्र - श्रीकदम्बगिरिप्रमुखानेक-प्राचीनतीर्थोद्धारक-पञ्चप्रस्थानमयसूरिमन्त्रसमाराधक-परम-पूज्याचार्यमहाराजाधिराज - **श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वराणां-** पट्टालंकार - साहित्यसम्राट् - व्याकरणवाचस्पति - शास्त्र-विशारद - कविरत्न - साधिकसप्तलक्षश्लोकप्रमाण - नूतन-संस्कृतसाहित्यसर्जक - परमशासनप्रभावक - निरुपमव्याख्या-नामृतवर्षि - बालब्रह्मचारि - परमपूज्याचार्यप्रवर **श्रीमद्-विजयलावण्यसूरीश्वराणां** पट्टधर-धर्मप्रभावक-व्याकरणरत्न-शास्त्रविशारद-कविदिवाकर-देशनादक्ष- बालब्रह्मचारि-परम-पूज्याचार्यदेव-**श्रीमद्विजयदक्षसूरीश्वराणां** - पट्टधर-जैनधर्म-दिवाकर-शासनरत्न-तीर्थप्रभावक- राजस्थानदीपक - मरुधर-देशोद्धारक-शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न-कविभूषणेति-पदसम-लङ्कृतेन **श्रीमद्विजयसुशीलसूरिणा** विरचितायां **छन्दोरत्न-मालायां** अष्टोत्तरशतछन्दनिरूपणात्मकस्तृतीयः स्तबकः

।। समाप्तः ।।

तत् समाप्तौ च समाप्तः '**छन्दोरत्नमाला**' ग्रन्थः ।।

ताज प्रिण्टर्स, बोराणा हाउस, जालोरी गेट के अन्दर, जोधपुर